



Download Class Notes

Topic : गुप्त काल

Medium: Hindi

File Type: PDF

गुप्तकाल

सामान्य परिचय:— तीसरी सदी में उत्तर भारत में कुषाणों तथा दक्कन में सातवाहनों के प्रभुत्व के अवसान के साथ देश में राजनीतिक विघटन का दौर आरंभ हुआ और इसी पृष्ठभूमि में गुप्तों ने एक साम्राज्य की नींव डाली। उनके मूल और मूल स्थान का निर्धारण निश्चय पूर्वक नहीं किया जा सकता लेकिन यह संभव दिखाई देता है कि उन्होंने शुरुआत उत्तर कुषाणों की किसी शाखा के मातहतों के रूप में की और चौथी सदी के दूसरे दशक में मगध क्षेत्र पर अपना राजनीतिक नियंत्रण स्थापित कर लिया।

गुप्तों के इतिहास की जानकारी के लिए साहित्यिक स्रोत के रूप में पुराण, स्मृतिग्रन्थ बौद्ध ग्रंथ, मंजुश्री मूलकल्प, जैन ग्रंथ परिशिष्टपर्वन, हरिवंश पुराण, विशाखदत्त कृत मुद्राराक्षस, कालिदास की रचनाएँ प्रमुख हैं। पुरातात्विक स्रोत के रूप में समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति चंद्रगुप्त की महारौली स्तम्भ लेख, विभिन्न मुद्राएँ स्मारक, फाहियान, के विवरण आदि महत्वपूर्ण हैं।

गुप्तकालीन इतिहास के स्रोत

गुप्तकालीन इतिहास की जानकारी के लिए हमें निम्नलिखित साधनों की मदद लेनी पड़ती है।

साहित्यिक प्रमाण

विधि-विषयक ग्रंथ:— कामंदक का नीतिसार चंद्रगुप्त प्रथम के काल का है जिसकी तुलना कौटिल्य के अर्थशास्त्र से की जाती है। इससे हमें गुप्त राजनीति एवं प्रशासन के बारे में पर्याप्त जानकारी प्राप्त होती है। चौथी शताब्दी में लिखित नारद स्मृति तथा बृहस्पति स्मृति ने गुप्त शासकों के न्याय प्रशासन को अत्यधिक प्रभावित किया।

कालिदास के ग्रंथ:— कालिदास के ग्रंथों में अभिज्ञान शाकुंतलम् मेघदूतम्, रघुवंशम्, मालविकाग्निमित्रम् ऋतुसंहार तथा कुमारसंभव शामिल हैं। हालांकि इन ग्रंथों की विषय वस्तु प्रेम, प्रकृति तथा सुंदरता है लेकिन साथ ही ये गुप्तकालीन प्रशासन, समाज तथा धर्म पर प्रकाश डालते हैं। इसके अलावा इनमें राजनैतिक इतिहास के संकेत भी प्राप्त होते हैं।

राजनैतिक नाटक:— विशाखदत्त के नाटक देवीचंद्रगुप्तम् से एक शक शासक द्वारा रामगुप्त की हत्या, चंद्रगुप्त का राज्यारोहण तथा ध्रुवदेवी (उसके भाई की विधवा) से उसके विवाह की जानकारी मिलती है। लेकिन दुर्भाग्यवश यह नाटक संपूर्ण रूप में उपलब्ध नहीं है। बज्जिका के कौमुदीमहोत्सव में चंद्रगुप्त प्रथम के राज्यारोहण तथा उसकी उपलब्धियों का उल्लेख है। शूद्रक का मृच्छकटिक मूलतः चारुदत्त (एक धर्मपरायण ब्राह्मण) तथा वसंतसेना (एक प्रसिद्ध गणिका) के बीच की प्रेम कहानी है इसमें तत्कालीन अस्थायी राजनैतिक परिस्थितियों की भी झलक मिलती है।

संस्कृत काव्य तथा अन्य साहित्य:— सोमदेव की कथासरितसागर, भास का स्पृणवासवदत्ता, सेतुबंध, काव्यमीमांसा, आयुर्वेद दीपिका तथा कुछ अन्य ग्रंथों में गुप्त शासकों से संबंधित कहानियाँ तथा आख्यान हैं।

धार्मिक स्रोत ब्राह्मण साहित्य:— वायु, मत्स्य, विष्णु, भागवत, स्कंद, ब्राह्मण, तथा मार्कण्डेय पुराण में गुप्त शासकों तथा उनके क्षेत्रों का उल्लेख है। महाभारत तथा रामायण से भी इस काल के विश्वासों, सामाजिक-धार्मिक प्रणाली पर प्रकाश पड़ता है।

बौद्ध ग्रंथ:— चीनी बौद्ध धर्म यात्रियों के विवरणों से गुप्तकाल के बारे में काफी जानकारी प्राप्त होती है। फाहियान चंद्रगुप्त द्वितीय के शासन काल में भारत आया था। हेनसांग हालांकि हर्ष के काल में आया था लेकिन उसने गुप्तकाल के दौरान बौद्धधर्म की लोकप्रियता का उल्लेख किया है। इसी प्रकार इत्सिंग 675 ई. के आस-पास भारत आया लेकिन उसने गुप्तवंश के प्रथम शासक श्रीगुप्त द्वारा नालंदा विहार के चीनी बौद्ध भिक्षुओं की ग्राम अनुदान का उल्लेख किया। मंजुश्री मूलकल्प में गुप्तशासकों से संबंधित कई छंद हैं।

सिक्के

आंतरिक प्रमाणः— गुप्त सिक्कों के आंतरिक प्रमाण से शासकों का इतिहास कई प्रकार से निर्धारित किया जा सकता है। इनसे हमें उन शासकों के शासन काल की वैसी घटनाओं की जानकारी प्राप्त होती है जो किसी अन्य स्रोत में नहीं मिलती (उदाहरणार्थ कुमारगुप्त प्रथम के अश्वमेध सिक्के) चंद्रगुप्त प्रथम के कुमारदेवी सिक्के से कुछ असामान्य राजनैतिक घटना का संकेत मिलता है। इन सिक्कों से राजा की धार्मिक भावना तथा उसके दरबार के वातावरण का ज्ञान होता है। समुद्रगुप्त के सिक्कों से लगता है कि उसके शासनकाल में सैनिक गतिविधियों का बोलबाला था। चंद्रगुप्त द्वितीय के सिक्कों से लगता है कि उसके दरबार का वातावरण अधिक परिष्कृत था।

बाह्य प्रमाणः— किसी सिक्के की बनावट अत्यधिक सुंदर अथवा खराब होती है। यद्यपि सिक्कों की बनावट में अंतर से स्पष्ट तौर पर कुछ नहीं कहा जा सकता, लेकिन उसके आधार पर राजनैतिक परिस्थितियों तथा विचारों का अनुमान लगाया जा सकता है। उदाहरणार्थ कुमारगुप्त प्रथम के उत्तराधिकारियों के सिक्कों की सुंदरता में धीरे-धीरे पतन देखने को मिलता है। इन सिक्कों से साम्राज्य की पतनशील अर्थव्यवस्था का तो अनुमान लगता ही है, साथ ही इससे राजा के शासनकाल का निर्धारण भी होता है। जिसके बारे में किसी अन्य स्रोत से जानकारी प्राप्त नहीं होती।

अभिलेखः— गुप्त अभिलेखों को मोटे तौर पर दो समूहों में विभाजित किया जा सकता है: प्रथम, निजी अभिलेख तथा द्वितीय, राजा की ओर से जारी किए गए लेख।

निजी रिकार्डः— इनमें धार्मिक संस्थाओं अथवा मूर्तियों की स्थापना के समय दिए गए अनुदानों का उल्लेख है। इनमें कभी कभी तत्कालीन शासक तथा उसकी उपलब्धियों का भी उल्लेख मिलता है। यह ध्यान रखने योग्य तथ्य है कि ये रिकार्ड आधिकारिक नहीं हैं तथा इनकी रचना आधिकारिक रिकार्ड की तरह उतने ध्यान से नहीं की गई है। उदाहरणार्थ, एक निजी व्यक्ति को गुप्त सम्राट को सिर्फ महाराजा कहने में कोई झिझक नहीं होती थी। मनकुवर बौद्ध प्रतिमा अभिलेख में कुमारगुप्त प्रथम के लिए प्रयुक्त इस उपाधि के आधार पर डॉ. फ्लीट ने निष्कर्ष निकाला है कि यह एक ऐतिहासिक तथ्य की ओर संकेत कर सकता है। अपने जीवन के अंतिम वर्षों में कुमारगुप्त पुष्पमित्रों तथा हूणों का एक सामंत मात्र रह गया था। जिनके आक्रमणों की व्यापक चर्चा स्कंदगुप्त के भिटारी अभिलेखों में मिलती है।

आधिकारिक रिकार्डः— ये या तो प्रशस्ति के रूप में हैं अथवा भूमि अनुदान के अभिलेख हैं जिन्हें ताम्र पत्र कहा जाता है। इन ताम्र पत्रों में अनुदानकर्ता एवं अनुदान प्राप्तकर्ता की वंशावली की जानकारी है। इनसे तत्कालीन आर्थिक स्थिति का पता लगाने में सहायता मिलती है। इनमें कुछ-कुछ राजनैतिक घटनाओं का भी विवरण मिलता है। उदाहरण के लिए, इस प्रकार के अनुदानों में, चंद्रगुप्त द्वितीय, तथा बुद्धगुप्त के शासन काल की घटनाओं की जानकारी प्राप्त होती है।

प्रस्तर तथा ताम्र पत्र आदेशः— गुप्त शासकों के काल के 42 अभिलेख प्राप्त हुए हैं। जिनमें 27 पत्थर पर उत्कीर्ण हैं। इनमें से 27 निजी अनुदान हैं, एक आधिकारिक अनुदान है तथा शेष चार प्रशस्ति हैं (दो समुद्रगुप्त के तथा दो स्कंदगुप्त के) शेष 15 अभिलेखों में से एक लौह स्तंभ है। जो चंद्रगुप्त द्वितीय की प्रशस्ति है। शेष ताम्र पत्र हैं। इनमें से तीन राजकीय भूमि अनुदान से संबंधित हैं, 10 अभिलेखों में ब्राह्मणों तथा मंदिरों को अनुदान हेतु राज्य द्वारा भूमि विक्री का उल्लेख है, शेष एक अभिलेख एक निजी व्यक्ति द्वारा अनुदान से संबंधित है।

गुप्त अभिलेखों की उपयोगिताः— इन अभिलेखों में गुप्तकाल की सामाजिक एवं राजनैतिक इतिहास संबंधी महत्वपूर्ण जानकारी है। इन अभिलेखों में पाए गए क्षेत्रों के आधार पर इन क्षेत्रों के गुप्त साम्राज्य के आधीन होने की जानकारी प्राप्त होती है। उदाहरण के लिए, स्कंदगुप्त का जूनागढ़ अभिलेख, अपनी स्थिति तथा इसमें निहित जानकारी के आधार पर साबित करता है कि सौराष्ट्र में उसका प्रभाव स्थापित था। इन प्रारंभिक अभिलेखों से जानकारी प्राप्त होती है कि किसी परिवार की उत्पत्ति किस क्षेत्र में हुई।

समकालीन गैर-गुप्त अभिलेखः— कदंब वंश के शासक काकुष्ठवर्मन के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि उसकी एक पुत्री का विवाह गुप्त वंश में हुआ था। वर्मन वंश के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि चंद्रगुप्त द्वितीय तथा कुमारगुप्त प्रथम के काल में वर्मन शासक, गुप्त अधीनता स्वीकार किए बिना, मंदसौर के पास मालवा के एक बड़े क्षेत्र पर शासन करते थे। कुमार गुप्त प्रथम के अभिलेख के साथ इन अभिलेखों के अध्ययन से उस क्षेत्र में गुप्त शासकों के अधिकार के बारे में जानकारी मिलती है। तोरमाण तथा मिहिरकुल के अभिलेखों से गुप्तवंश के पतन की जानकारी प्राप्त होती है।

परवर्ती अभिलेखः— राष्ट्रकूट ताम्रपत्र में राष्ट्रकूट शासक की प्रशंसा के क्रम में गुप्त सम्राट चंद्रगुप्त द्वितीय का अप्रत्यक्ष उल्लेख है। यशोधर्मण के नालंदा अभिलेख में भी गुप्त शासकों के बारे में कुछ अप्रत्यक्ष जानकारी है।

गुप्तकाल में प्रशासनः— गुप्त प्रशासन प्रणाली अतित की ऐतिहासिक परम्परा पर आधारित थी और तत्कालीन परिस्थितियों के अनुकूल बनाने के लिए इसे विकसित कर लिया गया था इसका ढांचा बहुत विशाल था। इसके अंग थे राजा, मन्त्रि परिषद, सामन्तगण, राज्य के विभाग, राजधानी, प्रान्तों तथा ग्रामों के कर्मचारी, उनके बहुमुखी कर्तव्य, उनके अधिकारों की विशाल सीमा और उनके अधीनस्थ कर्मचारियों की बहुत बड़ी संख्या। यह असभ्य निरंकुश शासन नहीं थी जहाँ राजा ही पूर्णाधिकार प्राप्त शासक था, मन्त्रि परिषद तथा राज्य के उच्च अधिकारियों के रूप में इसमें कई सांविधानिक प्रतिबन्ध थे। इसकी कार्यकुशलता ऐसी थी कि इसने राजस्व के स्रोतों को नियमित रूप दिया हिसाब के खाते को सराहनीय ढंग से रखा। और इसके आर्थिक साधनों की उत्तम व्यवस्था थी।

गुप्त राजाओं का शासन काल प्राचीन भारतीय इतिहास के गौरवशाली युग का प्रतिनिधित्व करता है। वस्तुतः इस समय सभ्यता और संस्कृति के अनेक क्षेत्रों में अभूतपूर्व प्रगति हुई तथा भारतीय संस्कृति के विकास को पूर्णतः प्राप्त हुई गुप्त युग की सर्वतोमुखी प्रगति को देखते हुये कुछ विद्वानों ने इस काल को हिन्दू संस्कृति का स्वर्ण-युग अथवा क्लासिकल युग की संज्ञा से अभिहित किया है।

एक शक्ति के रूप में गुप्तों के उदभव के कारकः—

- **गुप्त कुंषाण के सामंत थेः—** कुंषाणों के सामंत रहने के कारण गुप्तों पर उनके राजनैतिक, सैनिक व्यवस्था का पर्याप्त प्रभाव पड़ा। कुंषाणों की शक्ति घुड़सवार सेना में निहित थी जिसे गुप्तों ने ग्रहण कर लिया। साक्ष्यों स्पष्ट होता है कि गुप्त सेना में हाथियों व रथों का महत्व कम हो गया तथा घुड़सवार सेना का महत्व बढ़ गया। इससे उनकी शक्ति स्थापित होने में मदद मिली।
- **सशक्त आर्थिक आधारः—** गुप्तों के पास भौगोलिक आर्थिक संसाधनों की उपलब्धता थी प्रचुर मात्रा में खनिज संसाधन उपलब्ध थे, पर्याप्त उपजाऊ भूमि के कारण अधिशेष कृषि की स्थिति थी साथ ही जनसंख्या की बहुलता श्रमपूर्ति में सहायक थी।
- 1. **युद्ध एवं विजय नीतिः—** चंद्रगुप्त प्रथम ने बिहार और उत्तर प्रदेश के अधिकतर भागों पर अधिकार कर गुप्त राज्य की सीमा का विस्तार किया। आगे समुद्रगुप्त ने आर्यावर्त और दक्षिणावर्त की विजय की जिसका उल्लेख प्रयाग प्रशस्ति में है। चंद्रगुप्त द्वितीय ने शक शासक रुद्रसिंह तृतीय को पराजित कर पश्चिम में गुप्त साम्राज्य का प्रसार किया। मेहरौली अभिलेख से विदित होता है कि उसने पश्चिम में बाल्हिक एवं पूर्व में बंगाल तक अपनी सीमा का विस्तार किया।
- 2. **कूटनीतिक संबंधों की नीतिः—** गुप्त शासकों ने बेहतर कूटनीतिक कौशल का भी परिचय दिया। तथा गुप्त साम्राज्य का विस्तार किया।
- 3. **वैवाहिक संबंधों की नीतिः—** गुप्त शासकों ने वैवाहिक संबंधों के माध्यम से अपने साम्राज्य को सुदृढ़ आधार प्रदान किया। चंद्रगुप्त प्रथम ने लिच्छवी राजकुमारी कुमारदेवी से विवाह कर लिच्छवी वंश का सहयोग व

समर्थन प्राप्त किया। इस वैवाहिक संबंध की पुष्टि कुमार देवी प्रकार के सिक्कों से होती है। समुद्रगुप्त ने स्वयं को लिच्छवी दौहित्र कहा है अर्थात् लिच्छवियों के पुत्री का पुत्र। इस संज्ञा को वह गर्व के साथ स्वीकार करता है। जिससे पता चलता है कि लिच्छवियों के साथ संबंध होने से गुप्तों की स्थिति मजबूत हुई।

चंद्रगुप्त द्वितीय के समय वैवाहिक संबंधों की नीति गुप्त साम्राज्य के सुदृढ़ीकरण में अत्यंत प्रभावी भूमिका निभाती है। उसने वैवाहिक संबंधों की एक शृंखला बनाकर अनेक राजाओं तथा राजवंशों को अपना मित्र बना लिया। इस क्रम में चंद्रगुप्त द्वितीय ने सर्वप्रथम मथुरा के नागवंशी राजकुमारी से विवाह किया। नागवंश इस काल में अत्यंत शक्तिशाली वंश था जिसने गुप्तों की स्थिति को मजबूत बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। चंद्रगुप्त द्वितीय ने वाकाटक वंश के रुद्रसेन द्वितीय से अपनी पुत्री प्रभावती का विवाह किया। रुद्रसेन द्वितीय की मृत्यु के पश्चात् प्रभावती वाकाटक राज्य की संरक्षिका बनी। वाकाटकों के सहयोग से शकों को पराजित कर गुप्त साम्राज्य की सीमा चंद्रगुप्त द्वितीय ने सौराष्ट्र तक बढ़ा दी और इस शक विजय के उपलक्ष्य में चांदी के सिक्के जारी किए। चंद्रगुप्त ने कुंतल से भी वैवाहिक संबंध स्थापित किया। यह क्षेत्र महाराष्ट्र के दक्षिण और कर्णाटक के उत्तरी भाग में स्थित था जहां कदंब वंशी शासक राज्य करते थे। इस संबंध के जरिए गुप्तों ने अपना प्रभाव दक्षिण तक बढ़ाया।

इस प्रकार इन वैवाहिक सम्बन्धों का अपना राजनैतिक महत्व था। इनके माध्यम से गुप्तों ने अपने साम्राज्य का विस्तार तो किया ही साथ ही उसकी सुरक्षा भी सुनिश्चित कर ली।

शासन व्यवस्था

गुप्तकाल में राजतंत्र ही प्रशासन का प्रचलित रूप था। किन्तु पंजाब तथा राजपूताना में कुछ गणतंत्र भी स्थित थे। केन्द्रीय पंजाब में मद्रों का राज्य था। कांगडा-घाटी में कुणिन्दों का दक्षिण-पूर्वी पंजाब में योधेयों का, आगरा-जयपुर प्रदेश में अर्जुनायनों का और केन्द्रीय राजपूताना में मालवों का राज्य था। मध्य भारत में प्रार्जुनों सनाकानीको, काकों तथा अभीरों के गणतन्त्र थे। लगभग 400 ई. के पश्चात् ये सब गणतंत्र समाप्त हो गये।

सम्राट:

विशाल गुप्त साम्राज्य की शासन-व्यवस्था राजतन्त्रात्मक थी। मौर्य शासकों के विपरीत गुप्तवंशी शासक अपनी दैवी उत्पत्ति में विश्वास करते थे। चंद्रगुप्त द्वितीय की रानी को महादेवी ध्रुवदेवी कहा गया है। कभी-कभी रानियों को परममहद्वारिका तथा परममहद्वारिकाज्ञी महादेवी कहा जाता है। समुद्रगुप्त को पृथ्वी पर निवास करने वाला देवता कहा गया है। जो वहीं तक मनुष्य था जहाँ तक लौकिक क्रियाओं को सम्पन्न करता था। परन्तु अपनी दैवी उत्पत्ति के बावजूद वह स्वयं विधि नियमों का उल्लंघन नहीं कर सकता था। सम्राट प्रशासन का मुख्य स्रोत था जिसके अधिकार और शक्तियाँ असीमित थीं। वह कार्यपालिका का सर्वोच्च अधिकारी न्याय का प्रधान न्यायाधीश एवं सेना का सर्वोच्च सेनापति होता था। युद्ध के समय वह स्वयं सेना का संचालन करता था। प्रशासन के सभी उच्च पदाधिकारी की नियुक्ति सम्राट द्वारा ही की जाती थी और वे सभी उसी के प्रति उत्तरदायी होते थे। इस प्रकार सिद्धान्ततः उसकी स्थिति एक निरंकुश शासक जैसी थी। परन्तु व्यवहार में वह पर्याप्त अंश में उदार तथा जनहितकारी होता था। राजा को वृद्धों से सलाह लेने, प्रशासन-कला सीखने और न्याय-परायणता की भावना फैलाने की आवश्यकता पर बल दिया गया है। ज्येष्ठ पुत्र को प्रायः युवराज चुना जाता था। उसका अपना अलग नागरिक तथा सैनिक कार्यालय था राजा की अनुमति से वह प्रान्तीय सरकारों के प्रमुखों को आदेश भेज सकता था।

गुप्त सम्राट निरंकुश शासक नहीं थे। मन्त्रियों तथा उच्च कर्मचारियों के साथ उनके अधिकार बंटें हुए थे। ग्राम पंचायतों तथा नगर परिषदों आदि स्थानीय स्थानों को बहुत से अधिकार दे दिये गये थे। प्रजा की इच्छाओं का आदर करके तथा उनका हित-साधन करके सम्राट को जनता में लोकप्रियता प्राप्त करनी पड़ती थी।

गुप्तयुग में सामन्तवाद का उदय हो चुका था। इसके लिए समुद्रगुप्त की अधीनस्थ राजाओं के प्रति अपनायी गयी नीति उत्तरदायी थी। उसने जीते गये अधिकांश राज्यों को अपने साम्राज्य में सम्मिलित नहीं किया तथा अनेक राजाओं को स्वतंत्र रूप से अपने-अपने क्षेत्रों में शासन करने का अधिकार प्रदान कर दिया। ये सामंत तथा अधीन शासक महाराज की उपाधि ग्रहण करते थे। उन्हें सेना रखने तथा अपने अधीन जनता से कर वसूल करने का अधिकार प्राप्त था। पूर्वी मालवा में सनकानीक, बुन्देल खण्ड में परिव्राजक गुप्तों के सामंत थे।

अमात्य तथा मंत्री:— सम्राट अपने शासन कार्य में अमात्यों, मन्त्रियों एवं अधिकारियों से सहायता प्राप्त करता था। अमात्य से तात्पर्य प्रशासनिक अधिकारियों से था। उन्हीं में से योग्यता के आधार पर मंत्री नियुक्त किये जाते थे। प्रयाग प्रशस्ति में राजसभा का उल्लेख मिलता है जिसके सदस्य सभेय कहे जाते थे। सामान्यतः राजा का बड़ा पुत्र उत्तराधिकारी चुना जाता था। परन्तु कभी-कभी दूसरे योग्य राजकुमार को भी इस पद पर चुन लिया जाता था, यदि उसमें असाधारण योग्यता होती थी। समुद्रगुप्त का चुनाव इसी प्रकार का था। सम्राट के छोटे पुत्रों को प्रान्तीय शासकों के रूप में नियुक्त करने की प्रथा थी, जैसे कुमारगुप्त प्रथम के छोटे भाई गोविन्द गुप्त को मालवा का राज्यपाल नियुक्त किया गया था। गुप्त युग में युवराज की अधीनता में एक पृथक सैनिक विभाग हुआ करता था। कुमारगुप्त प्रथम के समय उसके पुत्र स्कन्दगुप्त ने अपने पिता के काल में सैनिक अभियानों में प्रमुख रूप से भाग लिया था।

गुप्त शासन में विभिन्न विभाग मन्त्रियों के अधीन होते थे। गुप्तकालीन लेखों तथा स्मृतियों में मन्त्रियों तथा सचिवों का उल्लेख मिलता है। विभागीय अध्यक्षों और मन्त्रियों में कोई खास अन्तर नहीं था सैनिक योग्यता मन्त्रियों के लिए अनिवार्य अर्हता थी। समुद्रगुप्त एवं चंद्रगुप्त द्वितीय के युद्ध सचिव हरिषेण और वीरसेन उच्चकोटि के सैनानायक भी थे। वीरसेन के उदयगिरि गुहालेख से पता चलता है कि वह आनुवंशिक रूप से अपने पद का उपयोग कर रहा था।

नागरिक कर्मचारी:— देश के प्रशासन के लिए गुप्त शासकों ने बहुत बड़ी संख्या में नागरिक कर्मचारी नियुक्त कर रखे थे। उनमें मुख्य कर्मचारी थे राजपुरुष, राजनायक, राजपुत्र, राजामात्य, महासामन्त, महाकुमारामात्य, महाप्रतिहार, इत्यादि।

केन्द्रीय अधिकारी:— गुप्तकालीन अभिलेखों में निम्नलिखित पदाधिकारियों के नाम मिलते हैं।

महासामन्धिविग्रहिक:— यह एक महत्वपूर्ण पदाधिकारी था जो युद्ध एवं शान्ति का मंत्री होता है।

दण्डपाशिक:— यह पुलिस विभाग का प्रधान अधिकारी होता था जो आज कल के पुलिस अधीक्षक के समान था।

विनयस्थितिस्थापक:— यह धर्म सम्बन्धी मामलों का प्रधान अधिकारी था जो सार्वजनिक मन्दिरों के प्रबन्ध की देख रेख करता था एवं लोगों के नैतिक आचरण पर दृष्टि रखता था।

कुमारामात्य:— कुमारामात्य उच्च पदाधिकारियों का विशिष्ट वर्ग था। इस वर्ग के पदाधिकारी अपनी योग्यता के आधार पर उच्च से उच्च पद पर नियुक्त किये जा सकते थे। कुमारामात्य का पृथक कार्यालय होता था। जिसे कुमारामात्याधिकरण कहा जाता है। हाल ही में प्रयाग के समीप एक टीले से प्राप्त की गई मुद्रा में मूलकुमारामात्याधिकरण लेख उत्कीर्ण मिलता है। इससे ऐसा लगता है कि गुप्त प्रशासन में एक मुख्य कुमारामात्य भी होता था। उसके नीचे कई कुमारामात्य होते रहे होंगे।

प्रान्तीय शासन:— प्रशासन की सुविधा के लिये विशाल गुप्त साम्राज्य अनेक प्रान्तों में विभाजित किया गया था। प्रान्तों को देश अवनी अथवा भुक्ति कहा जाता है। भुक्ति के शासक को उपरिक कहा जाता था जिसकी नियुक्ति सम्राट द्वारा की जाती थी तथा वह सम्राट के प्रति उत्तरदायी होता था। सीमांत प्रदेशों के शासक गोप्ता कहलाते थे। उपरिक के पद पर प्रायः राजकुमार अथवा राजकुल से सम्बन्धित व्यक्तियों की ही नियुक्ति की जाती थी। प्रान्तीय प्रशासन अनेक अधिकारियों का उल्लेख मिलता है— बलाधिकरणित सैनिक कोष का अधिकारी था। महादंडनायक सर्वोच्च न्यायाधिश था। विनयस्थितिस्थापक विधि एवं व्यवस्था मंत्री था। भटाश्वपति पैदल और घुड़सवार सेना का अधिपति था। महापिल्लुपति हाथी सेना का अधिकारी था।

जिला तथा नगर प्रशासन:— भुक्ति का विभाजन अनेक जिलों में हुआ था। जिला को विषय कहा गया जिसका प्रधान अधिकारी विषयपति होता था। विषयपति को कुमारामात्य भी कहा गया है। विषयपति की नियुक्ति प्रायः सम्बन्धित प्रान्त के उपरि (राज्यपाल) द्वारा ही की जाती थी। परन्तु कभी-कभी स्वयं सम्राट ही उनकी नियुक्ति करता था। विषयपति का अपना कार्यालय होता था। विषयपति एक समिति की सहायता से जिले का शासन चलाता था। जिसमें निम्नलिखित सदस्य होते थे।

जिले के प्रलेखागार को अक्षपटल कहा जाता था जो महाअक्षपटल के आधीन था। प्रमुख नगरों को प्रबन्ध नगरपालिकायें चलाती थीं। नगर का प्रधान अधिकारी पुरपाल कहा जाता था। वह कुमारामात्य की श्रेणी का अधिकारी होता था।

ग्राम शासन:— ग्राम शासन की सबसे छोटी इकाई होता था। जिसका प्रशासन ग्रामसभा द्वारा चलाया जाता था। महतर ग्राम का प्रमुख था किंतु उसके साथ कुछ अन्य कर्मचारी भी थे। जैसे दूत, गड़रिये, कर्ता, लिपिक दण्डिक आदि।

सैनिक अधिकारी:— उल्लिखित सैनिक अधिकारियों के नाम हैं— सेनापति, महासेनापति, बलाधिकृत, महाबलाधिकृत, दण्डनायक, सन्धिविग्रहिक, महासन्धिविग्रहिक गोप्ता आदि। चित्रवर्मा और वप्पादेव को सेनापति कहा गया है। किन्तु विजयगढ़ शिलालेख में महासेनापति का उल्लेख किया गया है।

न्याय प्रशासन:— सम्राट देश का सर्वोच्च न्यायाधीश होता था। वह सभी प्रकार के मामलों की सुनवाई की अन्तिम अदालत था। सम्राट के अतिरिक्त एक मुख्य न्यायाधीश तथा अन्य अनेक न्यायाधीश होते थे जो साम्राज्य के विभिन्न भागों में स्थित अनेक न्यायालयों में न्याय-सम्बन्धी कार्यों को देखते थे। व्यापारियों तथा व्यासियों की श्रेणियों के अपने अलग न्यायालय होते थे जो अपने सदस्यों के विवादों का निपटारा करते थे। स्मृति ग्रंथों में पूग तथा कुल नामक संस्थाओं का भी उल्लेख मिलता है। जो अपने सदस्यों के विवादों का फैसला करती थी। पूग नगर में रहने वाली विभिन्न जातियों की समिति होती थी। जबकि कुल समान परिवार के सदस्यों की समिति थी। गुप्तकाल में चोर और डाकू वेश्याओं के घरों, मदिरालयों, जूआ-स्थानों, रोटी वालों की दुकानों, उपवनो, सन्यासियों की कुटियों, खाली मन्दिरों, बजारों, मण्डि, के दालानों तथा वर्गों में बहुत जाया करते थे। और पुलिस भी उन्हें पकड़ने के लिए उन स्थानों में जाया करती थी। सन्देह वाले व्यक्तियों को पकड़ लिया जाता था। उनसे प्रश्नोत्तर किये जाते थे। यदि कोई शराबी सड़क पर पाया जाए तो उसे गिरफ्तार किया जा सकता था।

सैनिक संगठन:— गुप्त शासकों की सेना विशाल एवं सुसंगठित होती थी। सेना का सर्वोच्च अधिकारी महाबलाधिकृत कहा जाता था। हाथियों की सेना के प्रधान को महापीलुपति तथा घुड़सवारों की सेना के प्रधान को भटारवपति कहते थे। सेना में समानों की व्यवस्था रखने वाले प्रधान अधिकारी को रणमण्डागारिक कहते थे।

गुप्तकाल में भूमि एवं राजस्व

गुप्त युग में सिद्धांततः भूमि पर सम्राट का स्वामित्व माना जाता था लेकिन राजकीय भूमि के अतिरिक्त ऐसी भी भूमि थी जिन पर कृषकों का निजी स्वामित्व होता था। मंदिरों तथा ब्राह्मणों को जो भी भूमि दान में दी जाती थी उसे अग्रहार कहा जाता था। इस प्रकार की भूमि सभी करों से मुक्त होती थी तथा इनके ऊपर धारकों का पूर्ण स्वामित्व होता है। ऐसे भूमिदानों का उद्देश्य शैक्षिक एवं धार्मिक था। गुप्त राजाओं ने भूमि के विकास की ओर विशेष ध्यान दिया था। भूमिकर संग्रह करने के लिए ध्रुवाधिकरण तथा भूमि-आलेखों को सुरक्षित करने के लिए महाक्षटलिक और करणिक नामक पदाधिकारी थे। न्यायाधिकरण नामक पदाधिकारी भूमि सम्बन्धी विवादों का निपटारा करते थे। सिचाई की उत्तम व्यवस्था थी। गुप्त शासकों ने कुएँ, तालाब, नहरों आदि का निर्माण करवाया था। सम्राट स्कन्दगुप्त के जूनागढ़ के राज्यपाल पर्णदत्त के पुत्र चक्रपालित ने गिरनार में सुदर्शन झील के बाँध का पुनर्निर्माण करवाया था। जो लोग राजकीय भूमि पर कृषि करते थे उन्हें अपनी उपज का एक भाग राजा को कर के रूप में देना पड़ता था जो सामान्यतः छठा भाग होता था। गुप्त अभिलेखों में भूमिकर को उदंग तथा भागकर कहा गया है। स्मृति ग्रन्थों में इसे

राजा को वृत्ति कहा गया है। भूमिकर नकद अथवा अन्न दोनों में दिया जा सकता था। राजस्व की दूसरी प्रमुख स्रोत चुंगी थी जो नगरों में उत्पादित वस्तुओं के ऊपर लगायी जाती थी। समकालीन लेखों में विष्टि (बेगार) का भी उल्लेख मिलता है। किंतु गुप्तराजाओं के किसी भी लेख में इसका उल्लेख नहीं मिलता है वात्सायन के कामसूत्र से पता चलता है कि गाँवों में किसान स्त्रियों को मुखिया के घर के विविध प्रकार के काम, जैसे अनाज रखना, घर की सफाई, खेतों पर काम करना, आदि करने के लिए बाध्य किया जाता था और इसके बदले में उन्हें कोई मजदूरी नहीं मिलती थी। कुछ विद्वान इस विवरण के आधार पर गुप्तकाल में विष्टि के व्यापक रूप से प्रचलित होने का निष्कर्ष निकालते हैं।

इसके अतिरिक्त व्यापारिक वस्तुओं, चारागाहों, नमक, आदि पर भी कर लगते थे जिससे राज्य को प्रभूत आय होती थी। सीमा, बिक्री की वस्तुओं आदि पर जो कर लगते थे। उसे शुल्क कहा जाता था। स्कन्दगुप्त के बिहार लेख में शौलिक नामक पदाधिकारी का उल्लेख मिलता है। वह सीमा शुल्क विभाग का अधीक्षक होता था। भूमिरत्न, खानों का खुदाई तथा नमक आदि के ऊपर राज्य का एकाधिकार होता था। अपराधियों के ऊपर जो जुमाने लगाये जाते थे उनसे भी पर्याप्त धन राजकोष में जमा होता था। गुप्त युग की कर व्यवस्था उदार सिद्धांतों पर आधारित थी। इस काल की रचना कामन्दकीय नीतिसार में शासक को सलाह दी गयी है कि जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणों से जल ग्रहण करता है, उसी प्रकार प्रजा से राजा थोड़ा-थोड़ा धन ग्रहण करे। राजा के आचरण की तुलना गवाले तथा माली से करते हुए कामन्दक लिखते हैं कि जिस प्रकार ग्वाला पहले गाय का पोषण करता है तथा फिर उसका दूध दुहता है तथा जिस प्रकार माली पहले पौधे को सींचता है तथा फिर उनका चयन करता है, उसी प्रकार राजा को पहले प्रजा का पोषण करना चाहिए और फिर बाद में उससे कर ग्रहण करना चाहिए। अतः हम कह सकते हैं कि गुप्त सम्राटों ने इस आदर्श पालन किया होगा।

इस प्रकार गुप्त प्रशासन के विभिन्न वस्तुओं पर विचार करने के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि गुप्त सम्राटों ने जिस विस्तृत प्रशासनिक व्यवस्था का निर्माण किया वह अत्यन्त उदार एवं सुगठित थी। राज्य में पूर्ण शान्ति एवं व्यवस्था का वातावरण विद्यमान था। तभी तो फाहियान जैसे विदेशी को भी इस सम्बन्ध में किसी प्रकार की शिकायत का अवसर नहीं मिल सका था। गुप्तचरों एवं पुलिस अधिकारियों के आचरण से प्रजा को कोई कष्ट नहीं था। गुप्त नरेशों ने मौर्य शासन के अनेक कड़े नियमों को उदार एवं जनहितकारी बना दिया। गुप्त काल में ही प्रथम बार नगरों तथा ग्रामों में स्थानीय शासन का विकास किया गया और ग्राम सभाओं को वास्तविक अधिकार प्रदान किये गये।

सामाजिक जीवन

गुप्तयुगीन समाज में वर्ण-व्यवस्था पूर्णरूपेण प्रतिष्ठित थी। भारतीय समाज के परम्परागत चार वर्णों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र के अतिरिक्त कुछ अन्य जातियाँ भी अस्तित्व में आ चुकी थी। चारों वर्णों की सामाजिक स्थिति में विभेद था। वाराहमिहिर के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र के घर क्रमशः पाँच, चार, तीन तथा दो कमरों वाले होने चाहिए। न्याय व्यवस्था में भी विभिन्न वर्णों की स्थिति के अनुसार भेद-भाव बरते जाने का विधान मिलता है। परन्तु इस समय जाति-व्यवस्था उतनी अधिक जटिल नहीं हो पाई थी जितनी कि परवर्ती कालों में देखने को मिलती है।

समाज के सभी वर्णों एवं जातियों में ब्राह्मणों का प्रतिष्ठित स्थान था। यद्यपि उनका मुख्य कर्म धार्मिक एवं साहित्यिक था तथापि कुछ ब्राह्मणों ने अपने जातिगत पेशों को छोड़कर अन्य जातियों की वृत्ति अपना लिया था। मृच्छकटिक, जो गुप्तकालीन रचना है, में चारुदत्त नामक ब्राह्मण को सार्थवाह (व्यापारी) कहा गया है। इस ग्रन्थ से पता चलता है कि उसका परिवार पिछली तीन पीढ़ियों से व्यापार तथा वाणिज्य की वृत्ति अपनाये हुए थे। बौद्ध साहित्य से भी पता चलता है कि बहुसंख्यक ब्राह्मण व्यापार-वाणिज्य का कार्य करते थे। स्मृति ग्रन्थों में भी इस वृत्ति को ब्राह्मण वर्ण का

आपद्धर्म कहा गया है। यह इस काल में व्यापार-वाणिज्य के बढ़ते हुए प्रभाव का सूचक है। कुछ ब्राह्मण शिल्पकार का काम करते थे जबकि कुछ युद्ध एवं सैनिक कार्यों में भी निपुण थे। इसी प्रकार क्षत्रिय जाति के लोगों ने भी व्यापार एवं औद्योगिक वृत्ति अपना ली थीं इस प्रकार सभी वर्गों की वृत्तियों में शिथिलता आती जा रही थी। कृषक, पशुपालन, धातुकार, तेलकार, जुलाहे, माली आदि की समाज में विशिष्ट जातियाँ गठित हो चुकी थी। अनेक मिश्रित (संकर) जातियाँ भी अस्तित्व में आ चुकी थी। स्मृतियों में मूर्धावसिक, अम्बष्ट, पारशव, उग्रकरण आदि मिश्रित जातियों का उल्लेख हुआ।

स्मृति ग्रंथों एवं फाहियान के विवरण से पता चलता है कि समाज में अस्पृश्यता प्रचलित थी। फाहियान अछूतों को चाण्डाल कहता है। जो गाँवों एवं नगरों के बाहर निवास करते थे। वे ही आखेट करते एवं मांस बेचते थे। गाँवों तथा नगरों में प्रवेश करते समय वे लकड़ी पीटते हुए चलते थे ताकि लोग मार्ग से हट जाएँ और उनके स्पर्श से बच जाये। ऐसा सम्भवतः उनके अपवित्र कार्यों जैसे मांस काटना व बेचना, मैला ढोना आदि के कारण किया जाता था।

समाज की सभी जातियों में ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों की सर्वाधिक प्रतिष्ठा थी। ब्राह्मणों के साथ-साथ क्षत्रियों को भी उपनयन संस्कार एवं वेदाध्ययन के अधिकार प्राप्त थे। कुछ वैश्य जाति के लोग भी इन अधिकारों का उपयोग करते थे। वे ब्राह्मणों एवं विहारों को मुक्तहस्त से दान देते, अस्पताल खुलवाते तथा उनके निर्वाह की व्यवस्था करते थे।

स्मृति ग्रंथों से समाज में दास-प्रथा के प्रचलन का भी प्रमाण मिलता है। युद्ध में बंदी बनाये गये तथा ऋण न चुका सकने वाले लोग प्रायः दास बनाये जाते थे। मृच्छकाटिक से पता चलता है कि दास के शरीर पर उसके स्वामी का पूर्ण नियंत्रण होता था। किन्तु दास प्रथा पाश्चात्य देशों की दास-प्रथा के समान जटिल नहीं थी। एक निश्चित अवधि तक सेवा करने तथा ऋण चुका देने पर दास स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकने का अधिकारी था।

गुप्तकालीन साहित्य में स्त्रियों को प्रतिष्ठित स्थान दिया गया है। प्रायः सजातीय विवाह ही होते थे। यदा-कदा ही निम्नवर्ण की कन्या का विवाह उच्च वर्ण में किया जाता था। ऐसे विवाह को अनुलोम कहा जाता था। स्मृति ग्रन्थ इसकी मान्यता देते हैं। नारद एवं पाराशर की स्मृतियों से विधवा-विवाह का समर्थन मिलता है। किन्तु बृहस्पति इसे मान्यता नहीं देते। उन्होंने विधवा के लिये अजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करने तथा व्रत, उपवास, तप, दान आदि में लगे रहने का विधान प्रस्तुत किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि समाज में विधवाओं की दशा अच्छी नहीं थी। उन्हें कठोर साधना का जीवन बिताना पड़ता था। गुप्त युग में कन्याओं का विवाह सामान्यता 12-13 वर्ष की अवस्था में होता था।

इस समय सती प्रथा प्रचलित थी जिसका उल्लेख 510 ईस्वी के भानुगुप्त के एरण अभिलेख में मिलता है। जिसके अनुसार उसके मित्र गोपराज की मृत्यु के पश्चात उसकी पत्नी सती हो गयी थी। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि यह प्रथा समाज में उतनी लोकप्रिय नहीं हो पाई थी।

समाज में वेश्याओं के अस्तित्व का भी प्रमाण मिलता है। कामसूत्र में गणिकाओं को दिये जाने वाले प्रशिक्षण का विवरण दिया गया है इससे ऐसा प्रतीत होता है कि यह व्यवसाय काफी प्रचलित था। मुद्राराक्षस से पता चलता है कि उत्सवों के समय बड़ी संख्या में वेश्याये सड़को पर निकलती थीं। मन्दिरों में कन्यायें देवदासी के रूप में नृत्यगान करती थी। कालिदास ने उज्जयिनि के महाकाल मंदिर में नृत्यगान करने वाली देवदासियों का विवरण मिलता है।

पर्दा प्रथा का प्रचलन नहीं था तथा स्त्रियाँ स्वतन्त्रतापूर्वक विचारण कर सकती थी। किन्तु कुलीनवर्ग की महिलाये बाहर निकलते समय अपने मुँह पर घूँघट डालती थी। गुप्तकालीन स्मृतियों में स्त्री के सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार को कुछ मान्यता प्रदान की गयी तथा स्त्रीधन का दायरा विस्तृत कर दिया गया। समाज में उच्च वर्ग का जीवन सुखी तथा अमोदपूर्ण था। संगीत, नृत्य, नाटक आदि के द्वारा लोग आनन्द लेते थे। युवकों को प्रणयकला की शिक्षा की जाती थी। कामसूत्र में इस प्रकार के सुख सम्पन्न नागरिकों की दिनचर्या का वर्णन मिलता है। किन्तु यही स्थिति समाज के निम्नवर्गों की नहीं थी।

आर्थिक जीवन

गुप्त राजाओं का शासनकाल आर्थिक दृष्टि से समृद्धि एवं सम्पन्नता का काल माना जा सकता है। कृषि की उन्नति पर विशेष ध्यान दिया गया था। धान, गेहूँ, गन्ना, जूट, तिलहन, कपास, ज्वार-बाजरा, मसाले, धूप, नील आदि प्रभूत मात्रा में उत्पन्न होते थे। सिचाई की समुचित व्यवस्था थी। उद्योग धंधे उन्नति पर थे। कपड़े का निर्माण करना इस काल का सर्वप्रमुख उद्योग था। जिससे बहुसंख्यक लोगों को जीविका मिलती थी। इसके अतिरिक्त हाथी दाँत की वस्तुएँ बनाना, मूर्तिकारी, चित्रकारी, शिल्पकार्य, मिट्टी के बर्तन बनाना, जहाजों का निर्माण आदि अन्य प्रमुख उद्योग थे।

गुप्त युग में व्यापार एवं वाणिज्य के क्षेत्र में भी अभूतपूर्व प्रगति हुई। व्यवसाय एवं उद्योग का संचालन श्रेणियों करती थी। श्रेणी एक ही प्रकार के व्यवसाय अथवा शिल्प का अनुसरण करने वाले लोगों की समिति होती थी। मन्दसोर के लेख में पट्टवायश्रेणी (रेशमी सूत बनाने वालों की समिति) तथा इन्दौर लेख में तैलिक श्रेणी का उल्लेख मिलता है। श्रेणियाँ बैंकों का भी कार्य करती थी और सुद पर धन देती थी। प्रत्येक श्रेणी का एक प्रधान था चार या पाँच व्यक्तियों की एक कार्यकारिणी होती थी। बृहस्पति स्मृति से ज्ञात होता है कि ईमानदार, वेदों तथा अपने कर्तव्यों के ज्ञाता योग्य, आत्मसंयमी और कुलीन व्यक्ति ही श्रेणियों के मुखिया नियुक्त किये जाते थे। श्रेणियाँ स्वायत्तशासी संस्थाएँ थी जिनके अपने नियम और कानून होते थे। राज्य सामान्य तौर से उनका सम्मान करता था। स्मृतियों में राजा को निर्देश दिया गया है कि वह श्रेणियों के रीति रिवाज का पालन करवाये। अपने सदस्यों के झगड़ों का निपटारा वह स्वतः ही करती थी। प्रत्येक श्रेणी के पास अपनी अलग मुहर होती थी वैशाली से एक श्रेणी की 274 मुद्राएँ प्राप्त हुई हैं। इसमें साहूकार, व्यापारी तथा सौदागर सम्मिलित हैं।

गुप्त युग में नगरों में काफी प्रगति हुई। लम्बी एवं चौड़ी सड़कों द्वारा प्रमुख नगर जुड़े हुए थे। भड़ौच, उज्जयिनी, प्रतिष्ठान, विदिशा, प्रयाग, पाटिलपुत्र, वैशाली ताम्रलिप्ति, मथुरा, आहिच्छत्र, कौशाम्बी आदि प्रमुख व्यापारिक नगर थे। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने उज्जयिनी को अपनी द्वितीय राजधानी के रूप में विकसित किया था। इसने शीघ्र ही वैभव तथा समृद्धि में पाटिलपुत्र का स्थान ले लिया। गंगा, ब्रह्मपुत्र, नर्मदा, गोदावरी, कृष्णा एवं कावेरी नदियों द्वारा भी व्यापार होता था। भारतीयों ने मालवाहन जहाजों का निर्माण किया था। कुछ जहाजों में एक साथ 500 तक व्यक्ति बैठ सकते थे। विविध प्रकार के कपड़े, मसाले, खाद्यान्न, नमक, बहुमूल्य पत्थर आदि सामग्रियाँ एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाई जाती थी। इस समय बंगाल में ताम्रलिप्त प्रमुख बन्दरगाह था जहाँ से चीन, लंका, जावा, सुमात्रा आदि देशों के साथ व्यापार होता था। पश्चिमी भारत का प्रमुख बन्दरगाह भृगकच्छ (भड़ौच) था जहाँ से पश्चिमी देशों के साथ समुद्री व्यापार होता था। स्थल मार्ग द्वारा यूरोप के साथ भारत का व्यापार होता था। दक्षिणी पूर्वी एशिया एवं पश्चिमी एशिया के विभिन्न देशों के साथ भी भारत का व्यापार उन्नति पर था। कपड़े, बहुमूल्य, पत्थर, हाथी दाँत की वस्तुएँ गरम मसाले, नारियल, सुगन्धित द्रव्य नील, दवाएँ आदि निर्यात की प्रमुख वस्तुएँ थीं।

व्यापारी एक स्थान से दूसरे स्थानों के बीच माल लेकर जाते समय समूह में चलते थे। इसे सार्थ तथा इसके नेता को सार्थवाह कहा जाता था। व्यापारियों की समिति भी होती थी जिसे निगम कहा जाता था। निगम का प्रधान श्रेष्ठि कहलाता था।

गुप्तकाल में धार्मिक जीवन

गुप्त राजाओं का शासन काल ब्राह्मण (हिन्दू) धर्म की उन्नति के लिये प्रख्यात है। गुप्त शासक वैष्णव धर्म के अनुयायी थे तथा उनकी उपाधि परमभगावत की थी। उनका दृष्टिकोण पूर्णतया धर्म सहिष्णु था तथा वे किसी भी अर्थ में प्रतिक्रियावादी नहीं थे। उनकी धार्मिक सहिष्णुता एवं उदारता की नीति ने इस काल में विभिन्न धर्मों एवं सम्प्रदायों को फलने फूलने का समुचित अवसर प्रदान किया था। वे बिना किसी भेद भाव के उच्च प्रशासनिक पदों पर सभी धर्मानुयायियों की नियुक्तियाँ करते थे। सम्राट समुद्रगुप्त ने अपने पुत्र की शिक्षा-दीक्षा के लिये प्रख्यात बौद्ध विद्वान्

वसु-बन्धु को नियुक्ति किया था। चंद्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य ने शैव वीरशैव तथा बौद्ध आम्नकार्दव को कमशः अपने प्रधान मंत्री एवं प्रधान सेनापति के रूप में नियुक्त किया था। कुमारगुप्त प्रथम के काल में बुद्ध, सूर्य, शिव आदि की उपासना को समान रूप से राज्य की ओर से प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। नालन्दा में विख्यात बौद्ध विश्वविद्यालय उसी के समय में स्थापित किया गया जिसे राज्य की ओर से प्रभूत धन दान में दिया गया था। स्कन्दगुप्त के शासन काल में पौंच जैन तीर्थंकरों की पाषाण प्रतिमाओं का निर्माण करवाया गया था। वैन्यगुप्त नामक परवर्ती गुप्त शासक ने जो शैव था, महायान बौद्ध संस्थान को दान दिया था।

इस काल में अनेक विदेशियों ने हिन्दू धर्म एवं संस्कारों को अपना लिया था। जावा, सुमात्रा, बोर्नियो आदि दक्षिणी पूर्वी एशिया के विभिन्न द्वीपों में हिन्दू धर्म का व्यापक प्रचार हो चुका था।

गुप्त सम्राट विष्णु के उपासक थे। गुप्त सम्राट अपने आपको परम-भागवत कहते थे। कई गुप्त सिक्कों पर लक्ष्मी का चित्र दिखाई देता है और लक्ष्मी को विष्णु की सहचरी समझा जाता है। गुप्तकाल की मुहरों पर भी गरुड़ का चित्र पाया जाता है। बुद्ध गुप्त के एक अभिलेख में विष्णुध्वज का या विष्णु के ध्वज-दण्ड का उल्लेख किया गया है। स्कन्दगुप्त का जूनागढ़ शिलालेख विष्णु की स्तुति से आरंभ होता है। इस काल में पहली बार अवतारवाद की संकल्पना का उदभव हुआ। विष्णु के दश अवतारों की पूजा प्रचलित हुयी।

शिव के अनुयायी

गुप्तकाल में भक्तों ने अनेक विष्णु तथा शिव मन्दिर साथ-साथ बनवाए। इस सम्बन्ध में नागोद के शिव मंदिर, अजयगढ़ में नचना-कुठार के पार्वती मंदिर और खोह के शिव मन्दिर का उल्लेख किया जा सकता है। इन स्मारकों से ज्ञात होता है कि गुप्त सम्राट शिव की विभिन्न रूपों में पूजा करते थे। वे केवल शिव के ही नहीं शिव की पत्नी पार्वती और पुत्र कार्तिकेय के भी भक्त थे। स्कन्दगुप्त के बैल सिक्कों से ज्ञात होता है कि उसका झुकाव शिव की ओर था।

गुप्तकाल के कई अभिलेखों में कृतान्तपरशः (यम का घातक) शब्द का प्रयुक्त किया गया है। यम का घातक स्वयं शिव ही थे। गुप्त अभिलेखों में गुप्त सम्राटों की तुलना प्रायः शिव से ही की जाती है। चंद्रगुप्त द्वितीय का उदयगिरि गुफा अभिलेख में शिव की चर्चा है। इस अभिलेख का उद्देश्य था शम्भु के लिए एक मन्दिर का प्रतिष्ठापन करना और शम्भू तो शिव का ही एक उप नाम है। कुमारगुप्त के कर्मदण्ड अभिलेख की पहली पंक्ति में नमो महादेव शब्द दिए गए हैं। इस अभिलेख में महादेव की पूजा के लिए अर्चना की गई थी। देवगढ़ मंदिर के प्रवेश द्वार पर गंगा तथा यमुना देवियों को शिव की अनुचारियों के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

प्रतीत होता है कि गुप्त काल में शक्ति उपासना भी प्रचलित थी अजयगढ़ में नचना-कुठार स्थान पर एक पार्वती मन्दिर है। इस मंदिर में शक्ति और पराक्रम से भरे हुए चित्र है। उदयगिरि में सनाकानीक गुफा में भी कई मूर्तियाँ हैं। विष्णु की मूर्ति के आगे महिषासुरमार्दिनी का चित्र है।

सप्तमात्रिक शब्द गुप्त अभिलेखों में बार बार आता है। जिन सात माताओं का प्रायः उल्लेख किया जाता है, उनके नाम हैं, ब्राह्मी, महेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, महेन्द्री, और चामुण्डी।

गुप्तकाल में सूर्योपासना का भी वर्णन मिलता है। गुप्त शासकों ने सूर्योपासना को संरक्षण प्रदान किया। स्कन्दगुप्त के इन्दौर ताम्र पत्र अभिलेख में प्रार्थना की गई है कि सूर्य जनता की रक्षा करे। उन्नत बुद्धि के ब्राह्मण सूर्य देव की पूजा करते हैं।

गुप्त शासकों ने अपने-अपने विचारों के अनुसार हिन्दू धर्म को संरक्षण प्रदान किया। यदि एक शासक विष्णु उपासक था तो दूसरा शिव का अनुयायी था, तीसरा मुरुग का पूजक था जो चौथा सूर्य का उपासक था। किन्तु इससे वे अन्य मतों के प्रति असहिष्णु नहीं बने। परिणामतः बौद्ध धर्म और जैन धर्म को समान आदर प्रदान की गई। ई-त्सिंग

हमें बताता है कि श्री गुप्त ने मृगशिखावन में एक मन्दिर केवल चीनियों के लिए बनवाया। समुद्रगुप्त के समय में लंका के राजा ने बोधगया में एक बिहार बनाने के लिए अनुमति मांगी और अनुमति दे दी गई। चंद्रगुप्त द्वितीय के एक कर्मचारी ने सांची में एक बौद्ध बिहार भिक्षुओं के निर्वाह के लिए और एक दीपक जलाने के लिए दान दिया। चंद्रगुप्त द्वितीय के समय में भारत यात्रा करने वाले फाह्यान ने बताया है कि गान्धार में एक हीनयान बिहार था। शकिसा में उसने हीनयान तथा महायान के एक हजार भिक्षु तथा भिक्षुणियों देखीं। हीनयान के अनुयायी कान्यकुब्ज के बिहारों में रहते थे। पाटलिपुत्र में एक बिहार महायान के लिए और एक विहार हीनयान के लिए था। कपिलवस्तु के बिहार और स्तूप उसकी यात्रा के समय परित्यक्त और उजड़े हुए थे।

हिन्दु धर्म का पुनरुत्थान

गुप्त साम्राज्य ब्राह्मण धर्म और हिन्दु धर्म के पुनरुत्थान का प्रतीक था। गुप्तवंश के उदय से पहले भी भारविशो ने गंगा के तट पर दशाश्वमेध घाट पर दस अश्वमेध यज्ञ करके हिन्दू धर्म को लोकप्रिय बनाया था। गुप्तवंशी धर्मान्ध नहीं थे। और उन्होंने सभी के प्रति धार्मिक सहिष्णुता का प्रदर्शन किया, गुप्त शासक धर्मनिष्ठ हिन्दू थे। उनका पथ प्रदर्शन प्रायः ब्राह्मण परामर्शदाता करते थे। वे स्वयं संस्कृत भाषा के अच्छे ज्ञाता थे। चंद्रगुप्त द्वितीय को राजाधिराजिर्षि कहा गया है। जो राजा और ऋषि का मिश्रण है। समुद्रगुप्त और कुमारगुप्त ने अश्वमेध यज्ञ किए। विभिन्न हिन्दू देवी-देवताओं की पूजा के लिए मन्दिर बनाए गए।

गुप्तकालीन साहित्य

गुप्तयुग में साहित्य के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति हुई। गुप्त साम्राज्य की स्थापना के साथ ही संस्कृत भाषा की उन्नति को बल मिला तथा यह राजभाषा के पद पर आसीन हुई। गुप्त शासक स्वयं संस्कृत भाषा और साहित्य के प्रेमी थे तथा उन्होंने योग्य कवियों, लेखकों एवं साहित्यकारों को राज्याश्रय प्रदान किया था। प्रयाग प्रशस्ति समुद्रगुप्त को कविराज कहती है। परन्तु दुर्भाग्यवश हमें उसकी किसी भी रचना के विषय में ज्ञात नहीं है। चंद्रगुप्त द्वितीय भी बड़ा विद्वान एवं साहित्यानुरागी था जिसकी राजसभा नवरत्नों से अलंकृत थी।

गुप्तयुगीन कवियों में सबसे पहला उल्लेख उनका किया जा सकता है जिनकी रचनायें हमें प्राप्त नहीं हैं लेकिन जिनके विषय में मात्र हम उनके द्वारा रचित प्रशस्तियों से ही जानते हैं। इस प्रकार के कवियों में तीन नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं— हरिषेण, वीरशैव तथा वत्सभट्टि। हरिषेण सम्राट समुद्रगुप्त का सेनापति एवं विदेश सचिव था। उसकी सुप्रसिद्ध कृति प्रयाग-प्रशस्ति है इसका आधा भाग पद्य में तथा आधा गद्य में है। और इस प्रकार यह चम्पू काव्य का सुंदर उदाहरण है। यह विशुद्ध संस्कृत में लिखा गया है। हरिषेण वेदभी एवं गौड़ी शैलियों का अचार्य था। इस प्रशस्ति की शैली बड़ी ही मनोरम है तथा शब्द-चयन एवं अलंकारों का प्रयोग बड़ी ही कुशलता एवं सुन्दरता के साथ किया गया है। वीरसेन चंद्रगुप्त द्वितीय का युद्ध-सचिव था। उसकी रचना उदयगिरि गुहालेख है जिसमें उसे शब्द अर्थ, न्याय, व्याकरण राजनीति आदि का मर्मज्ञ, कवि एवं पाटलिपुत्र का निवासी कहा गया है। इसी प्रकार वत्सभट्टि कुमारगुप्त प्रथम की दरबारी कवि था। वह संस्कृत का प्रकाण्ड विद्वान था जिसने मन्दसौर प्रशस्ति की रचना की थी। इसकी रचना मालव संवत् 529 (472ईस्वी) में की गयी। इसमें दशपुर में सूर्य मन्दिर बनवाये जाने का वर्णन है। प्रशस्ति में कुल 44 श्लोक हैं। इसकी भाषा प्राञ्जल एवं मनोरम है। अलंकारों की छटा निराली है। सम्पूर्ण रचना वैदर्भी शैली में है।

गुप्तकाल संस्कृत साहित्य का स्वर्ण युग है। बार्नेट का मत है—प्राचीन भारत के इतिहास में गुप्तकाल का वही महत्व है जो यूनान के इतिहास में पेरिकलीयन युग का है। डॉ स्मिथ ने गुप्तकाल की तुलना ब्रिटिश इतिहास के एलिजाबेथन तथा स्टुअर्ट युगों से की। उनके मतानुसार भारत में कालिदास ने साधारण लेखकों को उसी प्रकार

प्रकाशहीन कर दिया जैसे इंग्लैण्ड में शेक्सपीयर ने अन्य सभी लेखकों को निष्प्रभ कर दिया। अनुश्रुति के अनुसार, कालिदास एक ब्राह्मण का पुत्र था। बचपन में ही उसके पिता का स्वर्गवास हो गया और एक चरवाहे ने उसकी पालन की। वह असभ्य और अशिक्षित था किंतु सुन्दर था। एक मंत्री की चलाकी से एक राजकुमारी के साथ उसके विवाह की एक अत्यंत रोचक कहानी है। विवाह के बाद उसने देवी कालि से सहायता की मांग की और एक महान कवि बना। उसकी कृतियों से ज्ञात होता है कि वह ब्राह्मण था और शिव तथा वेदान्त का अनुयायी था। उसे उज्जयिनी नगर से बहुत प्रेम था और हिमालय के नीचले के प्रदेशों से वह अच्छी तरह परिचित था।

गुप्तयुग के साहित्यिक कवियों में अधिकतर के विषय में पर्याप्त मतभेद है। संस्कृत के सुप्रसिद्ध कवि कालिदास की तिथि के विषय में बहुत अधिक विवाद है। अधिकांश इतिहासकार उन्हें चंद्रगुप्त द्वितीय का समकालीन मानते हैं। सात ग्रन्थों के प्रणयन का श्रेय कालिदास को दिया जाता है। रघुवंश, कुमारसंभव, मेघदूत, ऋतुसंहार, मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय तथा अभिज्ञान शाकुन्तलम्। इनमें प्रथम दो महाकाव्य दो खण्डकाव्य गीतिकाव्य तथा तीन नाटक ग्रन्थ हैं। 'रघुवंश' 19 सर्गों का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है जिसमें राम के पूर्वजों का वर्णन, उनका गुणगान तथा उनके वंशजों का चित्रण हुआ है। कुमारसंभव में 17 सर्ग हैं। जिनमें प्रकृति चित्रण तथा कार्तिकेय जन्म की कथा वर्णित है। ऋतुसंहार में छः ऋतुओं का वर्णन तथा मेघदूत में विरही यक्ष एवं उसकी प्रियतमा का वियोग वर्णन चित्रित है। मेघदूत विरह की अत्युत्कृष्ट रचना है। मालविकाग्निमित्र एक नाटक है। जिसमें मालविका और अग्निकमित्र की प्रणय कथा वर्णित है। विक्रमोर्वशीय में उर्वशी तथा पुरुरवा की प्रणय कथा है। अभिज्ञान शाकुन्तलम् सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य का सर्वोत्कृष्ट नाटक है। जिसके सात अंकों में हरितनापुर के राजा दुष्यन्त तथा शकुन्तला के प्रणय वियोग एवं पुनर्मिलन की कथा वर्णित है। इस नाटक की अत्यधिक ख्याति एवं प्रशंसा मिली है। तथा इसका कई विदेशी भाषाओं में अनुवाद किया जा चुका है। प्रसिद्ध जर्मन कवि गेट ने इस नाटक की प्रशंसा की काफी है।

कालिदास के अतिरिक्त गुप्तकाल की कुछ अन्य साहित्यिक विभूतियाँ हैं— भारवि, शूद्रक एवं विशाखदत्त। भारवि ने 18 सर्गों का किरातार्जुनीय महाकाव्य लिखा। वे अपने अर्थ गौरव के लिए प्रसिद्ध हैं। (भारतवेरर्थ गौरवम्) शूद्रक ने मृच्छकटिक नाटक लिखा जिसमें कुल 10 अंक हैं। इसमें चारुदत्त नामक एक निर्धन ब्राह्मण तथा वसन्तसेना नामक वेश्या की प्रणय कथा वर्णित है। विशाखदत्त जैसे अति प्रसिद्ध नाटक नाटककार हुए जिन्होंने मुद्राराक्षस एवं देवीचंद्रगुप्तम् नामक नाटक ग्रन्थों की रचना की। ये दोनों ग्रन्थ राजनीतिक घटनाओं से परिपूर्ण हैं। कुछ विद्वान वासदत्ता के रचियता सुबन्धु को भी गुप्तकालीन मानते हैं। बंगाल के विद्वान चन्द्रगोमिन ने चान्द्रव्याकरण नामक संस्कृत व्याकरण ग्रन्थ की रचना की तथा अमरसिंह नामक लेखक ने अमरकोश लिखा। विष्णुशर्मा ने पञ्चतन्त्र नामक प्रसिद्ध कथा संग्रह लिखा। इस ग्रन्थ का अनुवाद 50 से अधिक भाषाओं में किया जा चुका है।

भासः— कालिदास तथा बाण ने भास की प्रशंसा की है। भास का समय 300 ई. के लगभग निश्चित किया जा सकता है।

भट्टीः— भट्टी ने रावणवध पुस्तक लिखी जिसे भट्टीकाव्य भी कहा जाता है। राम की कथा देते हुए यह पुस्तक व्याकरण के नियम समझाती है।

पुराणः— पुराणों की रचना गुप्तकाल से काफी समय पहले की गई थी। किन्तु अब उन्हें अंतिमरूप दिया गया। विष्णु और शिव की स्तुति में कई परिच्छेद जोड़ दिए गए।

स्मृतियोंः— नारद कात्यायन और बृहस्पति की स्मृतियाँ इसी युग में लिखी गईं।

ईश्वरकृष्णः— ईश्वरकृष्ण ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक सांख्यारिका या सांख्य पद्धति दर्शन की रचना की।

प्रशस्तपादः— प्रशस्तपाद ने पदार्थ धर्म संग्रह नामक दर्शन लिखा।

व्यासभाष्यः— योग दर्शन पर व्यास-भाष्य की रचना की गई।

दण्डीः— दण्डी ने इसी युग में काव्यादर्श और दशकुमार चरित्र की रचना की।

आसंगः— बौद्ध लेखक आसंग ने योगाचार भूमि-शास्त्र और महायान सम्प्रदाय की रचना की।

वसुबन्धुः— वसुबन्धु ने महायान तथा हीनयान बौद्ध दर्शन पर कई पुस्तकें लिखीं।

दिङ्नागः— परमार्थ ने वसुबन्धु की जीवन कथा लिखी।

विज्ञानः— गुप्त युग में विज्ञान की विविध शाखाओं अंकगणित, ज्योतिष, रसायन, धातु-विज्ञान, आदि का सम्यक् विकास हुआ। इस समय के प्रसिद्ध गणितज्ञ आर्य भट्ट थे। जिनकी प्रमुख कृति आर्यभट्टीयम् है। इन्होंने गणित के विविध नियमों का प्रतिपादन किया तथा सर्वप्रथम यह खोज की कि पृथ्वी अपनी धुरी के चारों ओर परिभ्रमण करती है। प्रख्यात ज्योतिषाचार्य वराहमिहिर गुप्त युग के विभूति थे। उनकी सर्वप्रथम रचना बृहज्जातक है। उन्होंने विभिन्न ग्रहों एवं नक्षत्रों की स्थिति पर विचार किया। वराहमिहिर की अन्य रचनाओं में पंचसिद्धान्तिका में उस समय भारत में प्रचलित ज्योतिष के सिद्धांतों का विवरण मिलता है। चंद्रगुप्त द्वितीय का मेहरौली लौह स्तम्भलेख गुप्तालीन धातु-विज्ञान के समुन्नत होने का ज्वलंत प्रमाण है। यह लगभग डेढ़ हजार वर्षों से सदी, गर्मी एवं बरसात को झेलता हुआ ज्यो-का त्यों पड़ा हुआ है और इस पर किसी प्रकार की जंग नहीं लगने पाई है।

आर्यभट्ट, वराहमिहिर और ब्रह्मगुप्त को संसार के सर्वप्रथम नक्षत्र वैज्ञानिक और गणितज्ञ कहा गया है। आर्यभट्ट ने सूर्यसिद्धांत लिखा उसने सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण के वास्तविक कारण बताए। वराहमिहिर की पुस्तक बृहत् संहिता में नक्षत्र-विद्या वनस्पति-शास्त्र, प्राकृतिक इतिहास और भौतिक भूगोल के विषयों पर चर्चा की गई है। वराहमिहिर ने पंच सिद्धांत, बृहज्जातक और लघुजातक की रचना की। ब्रह्मगुप्त इस युग का महान नक्षत्र-वैज्ञानिक और गणितज्ञ था उसने यह घोषणा करके न्यूटन के सिद्धांत की पूर्व कल्पना कर ली— प्रकृति के एक नियम के अनुसार सभी वस्तुएँ पृथ्वी पर गिरती हैं, क्योंकि पृथ्वी स्वभाव से ही सभी वस्तुओं को अपनी ओर आकर्षित करती है।

कला और स्थापत्य

संस्कृति के विविध क्षेत्रों के साथ कला और स्थापत्य के क्षेत्र में भी गुप्त युग की उपलब्धियाँ भारतीय इतिहास के पृष्ठों में अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। कला की विविध विधाओं, जैसे वास्तु, स्थापत्य, चित्रकला, मृदभांड कला आदि का इस युग में सम्यक् विकास हुआ। धर्म एवं कला का समन्वय स्थापित हुआ।

इस युग में समस्त भारत में कला की अभूतपूर्व उन्नति हुई। मूर्ति-कला, भवन-निर्माण कला, चित्र-कला और टैराकोटा ने बहुत प्रगति की। कुछ अत्यन्त सुन्दर स्मारक गुप्त काल की देन हैं। इस युग में मथुरा, बनारस और पटना कला केन्द्र थे।

गुप्तकला में परिष्कृति और संयम का मेल दृष्टिगोचर होता है। कलाकारों ने मात्रा की अपेक्षा लावण्य पर अधिक बल दिया। उनकी कला में अभिव्यक्ति की सरलता और आध्यात्मिक उद्देश्य स्पष्ट दिखाई देते हैं। वस्त्रों, आभूषणों तथा अन्य सजावटी वस्तुओं के प्रयोग में गम्भीरता दिखाई देती है।

गुप्तकला 'रूपम' या सौन्दर्य आकृति की कल्पना के लिए प्रसिद्ध है। गुप्त कलाकारों ने सुन्दर आकृति की विभिन्न आकारों में उपासना की।

अजन्ता की गुफाओं में देवताओं, ऋषियों, राजाओं, रानियों, और उनके अनुचरों के चित्रों से अच्छाई और बुराई का पता चलता है।

गुप्त कला से शैली की सरलता और अभिव्यक्ति की सुगमता का पता चलता है। महान विचारों को प्राकृतिक और सरल ढंग से स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया है।

इसने भारत में तथा विदेशों में आश्चर्यपूर्ण सफलताएं प्राप्त की। विशेषकर गुफाओं की दीवारों पर चित्रण कला को मध्य एशिया और चीन में पहुंचाया गया।

वास्तु-कला: मन्दिर

गुप्तयुगीन वास्तुकला के सर्वोत्तम उदाहरण मन्दिर है। गुप्तकालीन मन्दिरों का निर्माण सामान्यतः एक ऊँचे चबूतरे पर हुआ था। जिन पर चढ़ने के लिये चारों ओर से सीढ़ियाँ बनाई गयी थी। प्रारम्भिक मन्दिरों की छतें सपाट होती थी किन्तु आगे चलकर शिखर भी बनाये जाने लगे। मन्दिरों के भीतर एक वर्गाकार कक्ष बनाया जाता था जिसमें मूर्ति रखी जाती थी। इसे गर्भ गृह कहा जाता था। यह तीन ओर से दीवारों से घिरा होता था। जबकि एक ओर प्रवेश द्वार बना रहता था। पहले गर्भगृह की दीवारों सादी होती थी किन्तु बाद में चलकर उन्हें मूर्तियों तथा अन्य अलंकरणों से सजाया जाने लगा। गर्भगृह के चारों ओर ऊपर से आकाशदित प्रदक्षिणा-मार्ग बना होता था। गर्भगृह के प्रवेशद्वार पर बने चौखट पर मकरवाहिनी गंगा और कूर्मवाहिनी यमुना की आकृतियाँ उत्कीर्ण मिलती हैं जो गुप्तकला की अपनी विशिष्टता है। इसके अतिरिक्त हंस-मिथुन, स्वास्तिक, श्रीवृक्ष, मंगलकलश, शंख, पद्म आदि पवित्र मांगलिक चिन्हों एवं प्रतीकों का भी अलंकरण किया गया है। इस काल के कुछ प्रमुख मन्दिर इस प्रकार हैं।

सौची का मन्दिर:- यह सौची के महास्तूप के दक्षिण-पूर्व की ओर स्थित है यह गुप्तकाल का प्रारम्भिक मन्दिर है जिसका आकार छोटा है, छत सपाट है, गर्भगृह चौकार है तथा इसके सामने छोटा स्तम्भ-युक्त मण्डप बना हुआ है।

तिगवां का विष्णु मन्दिर:- मध्य प्रदेश के जबलपुर जिले के समीप स्थित तिगवां नामक स्थान से यह मन्दिर मिला है। इसके गर्भगृह का व्यास लगभग आठ फुट है जिसके सामने चार स्तम्भों पर टिका हुआ लगभग सात फुट का एक छोटा मण्डप बना है। स्तम्भों के ऊपर कलश तथा कलशों के ऊपर सिंह की मूर्तियाँ बनाई गयी हैं। प्रवेशद्वार के पार्श्वों पर गंगा तथा यमुना की आकृतियाँ उनके वाहनों के साथ उत्कीर्ण मिलती हैं।

एरण का विष्णु मन्दिर:- मध्य प्रदेश के सागर जिले में एरण नामक स्थान पर भी इस काल में विष्णु का एक मन्दिर बना था जो अब ध्वस्त हो चुका है। मन्दिर के गर्भगृह का द्वार तथा उसके सामने खड़े दो स्तम्भ मात्र आज अवशिष्ट हैं। स्तम्भ शीर्ष, गज, सिंह, नारीमुख आदि अभिप्रायों से अलंकृत हैं।

नचना कुठार का पार्वती मन्दिर:- मध्य प्रदेश के पन्ना जिले में अजयगढ़ के समीप नचना कुठार नामक स्थान पर यह मन्दिर प्राप्त होता है। इसका निर्माण चबूतरों पर किया गया है। गर्भगृह साढ़े आठ फुट चौड़ा है जिसके चारों ओर ढका हुआ बरामदा है। यह प्रदक्षिणापथ था। गर्भगृह के सामने स्तम्भ युक्त मण्डप है। मन्दिर पर चढ़ने के लिये चबूतरे में चारों ओर सोपान बनाये गये हैं। मन्दिर की छत सपाट है। गर्भगृह की दीवारों को अलंकरणों से सुसज्जित किया गया है।

भूमरा का शिव मन्दिर:- मध्य प्रदेश के सतना जिले में भूमरा नामक स्थान से पाषाण निर्मित इस मन्दिर का गर्भगृह प्राप्त हुआ है। इसके प्रवेशद्वार के पार्श्वों पर गंगा-यमुना की आकृतियाँ बनी हुई हैं। इसके द्वार की चौखट भी अलंकरणों से सजायी गयी है। मन्दिर की छत चिपटी है। गर्भगृह के भीतर एकमुखी शिव लिंग स्थापित किया गया है। उसके सामने स्तम्भयुक्त मण्डप तथा चारों ओर प्रदक्षिणापथ मिलता है।

सतना जिले में ही उचेहरा के पास पिपरिया नामक स्थान से 1968ई. में के.डी. वाजपेयी ने एक विष्णु मूर्ति की खोज की थी। यहाँ गर्भगृह का अलंकृत द्वार मिलता है। द्वार स्तम्भों तथा सिरदल पर पूर्णघट, पत्रावली, नगरमुख, व्याधमुख आदि अलंकरण मिलते हैं। विष्णु की प्रतिमा मन्दिर के पास से ही मिली है इसके अतिरिक्त सतना में खोह, ऊँचेहरा, नागोद तथा जबलपुर में मढ़ी नामक स्थानों से भी गुप्तकालीन मन्दिरों के अवशेष प्राप्त होते हैं।

देवगढ़ का दशावतार मन्दिर:- यह उत्तर प्रदेश के ललितपुर (प्राचीन झांसी) में स्थित है। सभी मन्दिरों में देवगढ़ का दशावतार मन्दिर सर्वाधिक सुन्दर है। इसका ऊपरी भाग नष्ट हो गया है। मन्दिर का निर्माण एक ऊँचे एवं चौड़े चबूतरे पर किया गया है। मन्दिर के गर्भगृह का प्रवेशद्वार आकर्षक तथा कलापूर्ण है। मन्दिरों की दीवारों पर शेषशय्या पर शयन करते हुए भगवान विष्णु, नरनारायण आदि के सुन्दर दृश्य उत्कीर्ण हैं। गर्भगृह के ऊपर पिरामिडनुमा ऊँचा तिहरा शिखर मिलता है। इसके चारों दिशाओं में चैत्याकार कीर्तिमुख (गवाक्ष) तथा इसके ऊपर बीच में खरबुजिया

आकार का विशाल आमलक बना था। इस प्रकार जहाँ अन्य मन्दिरों की छतें सपाट हैं, वहाँ यह मन्दिर शिखर मन्दिर का पहला उदाहरण है। इसे गुप्तकाल के उत्कृष्ट वास्तु का नमूना भी माना जा सकता है।

भीतरगँव का मन्दिर:— यह उत्तरप्रदेश के कानपुर जिले में स्थित है। इस मन्दिर का निर्माण ईंटों से किया गया है। मन्दिर एक वर्गाकार चबूतरे पर बना है। गर्भगृह के सामने मण्डप है। भीतरगँव का मन्दिर भी शिखरयुक्त है जिसका शिखर लगभग 70 फुट ऊँचा था। शिखर में चैत्याकार मेहराब बनाये गये हैं। बाहरी दीवारों में बने ताखों में हिन्दू देवी देवताओं—गणेश, आदिवाराह, दुर्गा, आदि की मृणमूर्तियाँ रखी गयी हैं।

मध्य प्रदेश के रायपुर जिले के सिरपुर नामक स्थान से ईंटों द्वारा निर्मित एक अन्य मन्दिर प्राप्त होता है। जिसका मात्र गर्भगृह अविशिष्ट है। इसे लक्ष्मण मन्दिर कहा जाता है तथा इसका वास्तु भीतर गँव के मन्दिर के ही समान है। प्रवेशद्वार के पार्श्व, डाट तथा चौखट के ऊपर गुफ्फालीन अलंकरण उत्कीर्ण मिलते हैं।

स्तूप— मन्दिरों के अतिरिक्त दो बौद्ध स्तूपों—सारनाथ का धमेख स्तूप तथा राजगृह स्थित जरासंध की बैठक का निर्माण गुप्त सम्राटों के काल में ही हुआ माना जाता है।

राजगृह में जरासंध की बैठक में पाया गया स्तूप तथा सारनाथ में धमेख स्तूप भी गुप्त काल के हैं। सारनाथ का स्तूप 128 फुट ऊँचा है। इसके चारों कोनों पर बुद्ध की मूर्तियों के चार गवाक्ष बने हुए हैं। नरसिंहगुप्त बालदित्य ने नालन्दा में ईंटों का एक बौद्ध मन्दिर बनवाया।

गुप्तकालीन चित्रकला

अजन्ता के चित्र— गुप्तयुग में चित्रकला अपनी पूर्णता को प्राप्त हो चुकी थी। इस युग की चित्रकला के इतिहास—प्रसिद्ध उदाहरण आधुनिक महाराष्ट्र प्रान्त के औरंगाबाद जिले में स्थित अजन्ता तथा मध्य प्रदेश के ग्वालियर के समीप स्थित बाघ नामक पर्वत गुफाओं से प्राप्त होते हैं। अजन्ता की गुफाओं के चित्र समस्त विश्व में प्रसिद्ध हैं। अजन्ता में चट्टान को काटकर उन्तीस गुफायें बनायी गयी थीं। इनमें चार चैत्यगृह तथा शेष बिहार गुफायें थीं।

अजन्ता में कुल 29 गुफाओं में चित्र बने थे परन्तु अब केवल छः गुफाओं (12, 9-10 तथा 16-17) के चित्र अवशिष्ट हैं। इनका समय अलग-अलग है। नवीं दशवीं गुफाओं के चित्र प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व के हैं तथा दसवीं गुफा के स्तम्भों पर अंकित चित्र एवं सोलहवीं—सत्रहवीं गुफाओं के भित्ति चित्र गुप्तकालीन हैं। इन्हे चित्रकार सर्वप्रथम भली-भाँति रगड़कर साफ करते थे तथा फिर उसके ऊपर लेप चढ़ाते थे। चित्र का खाका बनाने के लिए लाल खड़िया का प्रयोग होता था। रंगों में लाल, पीला, नीला, काला, तथा सफेद रंग प्रयोग में लाये जाते थे।

अजन्ता के गुफाचित्र बौद्ध धर्म से संबन्धित हैं। बुद्ध के जीवन की विविध घटनाओं तथा जातक कथाओं के दृश्यों का अंकन बहुतायत से किया गया है। अजन्ता की 16 वीं गुफा के चित्रों में मरणासन्न राजकुमारी नामक चित्र सर्वाधिक सुन्दर एवं आकर्षक है। विविध फूल-पत्तियों, वृक्षों तथा पशु-आकृतियों से अलंकरण का काम लिया गया है। अजन्ता में फ्रेस्को तथा टेम्पेरा दोनों की विधियों से चित्र बनाये जाते थे। तथा रंग के साथ अंडे की सफेदी एवं चूना मिलाया जाता था। शिलाचूर्ण, सिता, मिश्री, गोंबर, सफेद, मिटटी, चोकर आदि को फेटकर गाढ़ा लेप तैयार किया जाता था। इसी गुफा में बुद्ध के महाभिनिष्क्रमण का चित्रांकन है जिसमें वे अपनी पत्नी, पुत्र तथा परिचायिका को छोड़कर जाते हुए दिखाये गये हैं।

सत्रहवीं गुफा को चित्रशाला कहा गया है। ये अधिकतर बुद्ध के जन्म, जीवन, महाभिनिष्क्रमण तथा महापरिनिर्वाण की घटनाओं से सम्बन्धित हैं। समस्त चित्रों में माता और शिशु नामक चित्र काफी आकर्षक हैं जिसमें संभवतः बुद्ध की पत्नी अपने पुत्र को उन्हें समर्पित कर रही हैं। हैवल महोदय ने तो इस चित्र को जावा के बोराबुदुर से प्राप्त कला

की समकक्षता में रखना पसन्द किया है। उनके महाभिनिष्क्रमण का एक चित्र अत्यन्त सजीवता के साथ उत्कीर्ण किया गया है। इसमें युवक सिद्धार्थ के सिर पर मुकुट है। तथा शरीर सुडौल है। आँखों से अहिंसा, शान्ति एवं वैराग्य टपक रहा है। एक अन्य चित्र में कोई सम्राट एक सुनहले हंस से बातें करता हुआ चित्रित किया गया है। निवेदिता के विचार में इस चित्र से बढ़कर विश्व में कोई दूसरा चित्र नहीं हो सकता। इसी गुफा में आकाश में विचरण करते हुए गन्धर्वराज को अप्सराओं तथा परिचारकों के साथ चित्रित किया गया है। अन्य चित्रों में काले मृग, हाथी एवं सिंह के शिकार के दृश्यों का अंकन अत्यधिक कुशलता के साथ किया गया है। अजन्ता की गुफाओं में जातक कथाओं से लिये गये दृश्यों का भी बहुविध अंकन प्राप्त होता है। जातक कथाएँ सबसे अधिक सत्रहवीं गुफा में चित्रित की गयी हैं।

राथेन्स्टाइन ने लिखा है— करुणा और विचारों की दृष्टि से मेरे विचार में कला के इतिहास में इससे अधिक श्रेष्ठ चित्र बनाना सम्भव नहीं है। फ्लोरेन्स का कलाकार अधिक अच्छी रूप रेखा बना लेता और वेनिस का कलाकार अधिक अच्छे रंग लगा सकता, किन्तु उनमें से एक भी इससे अच्छी प्रकृति के सौन्दर्य प्रस्तुत न कर सकता।

श्रीमती हैरिघम के अनुसार ये चित्र प्रकाश और छाया के क्रम पर बनाए गए हैं जिनकी तुलना इटली में सत्रहवीं शताब्दी से पहले नहीं की जा सकती।

अन्य गुफाओं के चित्र— नवीं-दसवीं गुफाओं के चित्र सबसे प्राचीन हैं और उनका समय लगभग प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व निर्धारित किया जाता है। इनमें एक राजकीय जुलूस का चित्र अति प्रसिद्ध है। इसमें राजा, रानी तथा बहुत से स्त्री पुरुषों को सुसज्जित वेश भूषा में चलते हुए दिखाया गया है। इस चित्र का अलंकरण अत्यन्त विस्तृत है। पहली एवं दूसरी गुफाओं के चित्रों में सबसे सुन्दर चित्र फारस देश के राजदूत का है जो चालुक्य नरेश पुलकेशिन द्वितीय दरबार में आया था। इनमें संभवतः पुलकेशिन दूत का स्वागत करते हुए दिखाया गया है। पहली गुफा की ही एक भित्ति पर 12 फुट तथा 8 फुट लम्बा बुद्ध का मार (कामदेव) विजय का चित्र उत्कीर्ण मिलता है। बुद्ध तपस्या में लीन हैं जिन्हें कामदेव कई कन्याओं के साथ रिझाने का प्रयास कर रहा है। इसी गुफा में एक दम्पति का चित्रण है जिसमें प्रेमी अपने हाथ से प्रेमिका को मधुपात्र देते हुए दिखाया गया है।

बाघ की चित्रकला— बाघ की गुफाएँ बाघ पहाड़ियों (मोप्रो) को काटकर बनायीं गयी हैं। सर्वप्रथम 1818 ईस्वी में इनका पता डेनजर फील्ड ने लगाया था। इन गुफाओं की संख्या नौ है जिनमें चौथी-पॉचवी गुफाओं के भित्ति चित्र सबसे अधिक सुरक्षित अवस्था में हैं। मालवा की बाघ गुफाएँ भी अजन्ता की गुफाओं की कोटि की हैं। उनमें से अधिकांश चित्र धर्म-निरपेक्ष हैं। गायन तथा नृत्य को स्वच्छन्दता से प्रयुक्त किया गया है। इन चित्रों में एक संगीतयुक्त नृत्य के अभिनय के दृश्य अत्यन्त आकर्षक हैं। जिसमें स्त्रियों और पुरुषों को अलंकृत वेश-भूषा में बाजों के साथ स्वच्छन्दतापूर्वक नृत्य करते हुए दिखाया गया है। इन चित्रों के अध्ययन से तत्कालीन मध्यभारत के सामान्य जन-जीवन का अन्दाजा लगाया जा सकता है।

मूर्तिकला— सारनाथ गुप्त काल की आकृतियों और नक्काशी के लिए भरपूर भण्डार सिद्ध हुआ है। जिनमें से कई समुद्रगुप्त और उसके उत्तराधिकारियों के समय के उच्चकोटि के नमूने हैं। तांबे की मूर्तियाँ बनाने का कार्य विशेष सफलता के साथ किया गया। छठी शती के अन्त में बिहार में नालन्दा के स्थान पर बुद्ध की 80 फुट ऊँची तांबे की मूर्ति स्थापित की गई और साढ़े सात फुट ऊँची बुद्ध की सुल्तानगंज मूर्ति अब भी बकिंघम के संग्रहालय में देखी जा सकती है। यह चंद्रगुप्त द्वितीय के समय की है। कला के उच्चतम विकास का काल पॉचवी शती को माना जा सकता है। जो कालिदास का भी समय था, अर्थात् चंद्रगुप्त द्वितीय और उसके पुत्र का राज्य-काल अजन्ता की दो सर्वोत्कृष्ट गुफाएँ, 16 तथा 17 उस गौरवमयी शताब्दी में ही खोदी गई थी।

गुप्तकाल में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी

गुप्तकाल में विज्ञान व प्रौद्योगिकी का विकास काफी बेहतर माना जाता है। जो निम्न है।

गणित:— आर्य भट्ट एवं ब्रह्म गुप्त इस काल के अति प्रसिद्ध गणितज्ञ थे। आर्यभट्ट ने आधुनिक परिकलनों के समान सर्वप्रथम पाई (ग) के मान का दशमलव के 3 अंको तक शुद्ध गणना किया। उन्होंने ज्या (Sine) के क्षेत्रफल का जानने का नियम निकाला जिससे त्रिकोणमिती का विकास हुआ। दशमलव के विकास का श्रेय भी कुछ विद्वान आर्यभट्ट को ही देते हैं। वे दुनिया के प्रथम वैज्ञानिक थे जिन्होंने सौरमण्डल के केन्द्र में सूर्य के होने की बात कही तथा पृथ्वी द्वारा अपनी धुरी पर चक्कर लगाने तथा परिक्रमा करने के मत का प्रतिपादन किया। उन्होंने चन्द्रग्रहण के वास्तविक कारणों की व्याख्या की। इसी प्रकार ब्रह्मगुप्त गुरुत्वाकर्षण की व्याख्या की तथा चक्रिय चतुर्भुज का सिद्धांत दिया।

भौतिकी:— कणाद (पैशेषिक दर्शन के प्रतिपादक) इस काल के महत्वपूर्ण भौतिक विद थे उन्होंने मूल कणों की व्याख्या की बाद में इनके सिद्धांतों से भारतीय भौतिकी का विकास हुआ।

रसायन:— गुप्तकाल में रसायन विद्या की स्थिति काफी अच्छी थी इसी काल में मेहरौली का लौह स्तम्भ बना है। जिस पर हजारों वर्ष बाद भी जंग नहीं लगा है। यह बतलाता है कि भारतीयों को काफी उच्च रासायनिक अभिक्रियाओं की जानकारी थी।

धातु विज्ञान:— गुप्तकाल में लौह तथा कांस्य धातुओं को काफी बेहतर ढंग से बनाया जाता था।

चिकित्सा विज्ञान:— गुप्तकाल से चिकित्सा विज्ञान काफी अच्छी स्थिति में था इस काल में धनवन्तरी तथा नवनीतकरण जैसे चिकित्सा शास्त्रीयों की जानकारी मिलती है। भारतीय चिकित्सा शास्त्र कफ, वायु, पित्त, के पालन पर कार्य करता था।

गुप्तकाल में स्वर्णकाल का मुद्दा/समीक्षा

गुप्तकाल को इतिहासकारों के एक वर्ग द्वारा स्वर्णकाल से विभूषित किया गया है जबकि दूसरा वर्ग इसकी आलोचना करते हुए इस काल को स्वर्णकाल नहीं मानता है। जो विचारक स्वर्णकाल में विश्वास रखते थे उनका कहना था कि इस काल में राजनैतिक स्थायित्व, साहित्य, कला, विज्ञान, में अभूतपूर्व वृद्धि हुयी अतः गुप्तकाल को स्वर्णकाल कहा जाना चाहिए जबकि इसकी आलोचना करने वाले विद्वानों ने सामाजिक दोषों एवं सामंती लक्षणों के आधार पर स्वर्ण युग की संकल्पना को मिथ्या बताते हुए खारिज कर दिया अतः इसका विवेचन विश्लेषण प्रासंगिक है

स्वर्णकाल के पक्ष में विचार:

1. गुप्तकाल राजनैतिक स्थायित्व का काल था इसके पूर्व विभिन्न विदेशी तथा देशी शासकों के तहत राजनैतिक अशांति विद्यमान थी लेकिन गुप्तों ने एक बड़े क्षेत्र में राज्य स्थापित कर आंतरिक अशांति से सुरक्षा प्रदान किया।
2. यह काल आर्थिक संवृद्धि का काल था देश के विभिन्न भागों में दस्तकारी उद्योग, व्यापार, वाणिज्य, नगर, मुद्रा, पूंजी, बाजार, काफी अच्छी स्थिति में थे इसी काल में सर्वाधिक संरका क्षेत्र में सोने के सिक्के चलाये गए अतः यह आर्थिक संवृद्धि का काल था।

3. धार्मिक दृष्टि से यह काल सहिष्णुता का काल था जिसमें बौद्ध, ब्राह्मण जैन सभी धर्मों का काफी विकास हुआ।
4. साहित्य में यह काल सृजनता तथा मौलिकता का काल था कालिदास की रचनाएँ विश्व की रचनाओं में श्रेष्ठ हैं।
5. विज्ञान के क्षेत्र में यह ऐसा काल था जिसके समान समकालीन विश्व में कहीं भी उदाहरण नहीं मिलता। आर्यभट्ट ने चीरकालिक वैज्ञानिक मान्यताओं का प्रतिपादन किया जैसे पृथ्वी द्वारा सूर्य का चक्कर लगाना, पाई, दशमलव, त्रिकोणमिति का अविष्कार आदि। इसी प्रकार ब्रह्मगुप्त ने न्यूटन से पूर्व गुरुत्वाकर्षण का सिद्धांत दिए इस काल में रसायन, भौतिकी तथा चिकित्सा क्षेत्र में लोगों से उच्च स्तरीय जानकारी थी।
6. कला के क्षेत्र में गुप्तकालीन कलाएं पूर्व कालीन भारत से काफी अच्छी हैं। इस काल में जिन मंदिरों का विकास हुआ बाद के जीवनकाल में काफी महत्वपूर्ण साबित हुईं। सारनाथ में बुद्ध की उत्कृष्ट मूर्तियों का निर्माण हुआ। अजन्ता की गुफाओं (सं० 16 तथा 17) में बेहतरीन चित्रकारियों की गईं।

विपक्ष में तर्क:-

1. राजनैतिक स्थायित्व एवं आकार की दृष्टि से गुप्तकाल मौर्य काल जैसा नहीं था। राजनीति एवं प्रशासन में सामंती संबंध कायम हुए जिससे राजनीति में अस्थिरता बनी रही।
2. इस काल में विदेशी व्यापार में अवनति हुयी विशेषकर भारत रोम व्यापार का पतन हुआ।
3. सामाजिक दृष्टि से इस काल में तमाम दोष थे अस्पृश्यता एवं दास प्रथा, विद्यमान थी। स्त्रियों की स्थिति अति दयनीय थी। देवदासी प्रथा सती प्रथा, बाल विवाह तथा वैश्यावृत्ति के साक्ष्य बतलाते हैं कि महिलाओं का जीवन काफी कष्टमय था।

मुल्यांकन:- विभिन्न मतों की समीक्षा करने के बाद कहा जा सकता है कि गुप्त काल स्वर्ण काल नहीं था। यद्यपि इस काल में कई क्षेत्रों में काफी अच्छी स्थिति थी। स्वर्णकाल या अन्धकार काल अपने आप में अनैतिहासिक है जो यूरोपीय इतिहास लेखन का भारत में आरोपण है। अब तक मानव जाति का कोई इतिहास पूर्णतः उज्ज्वल व दोषरहित नहीं रहा है। अतः गुप्त काल में इस अवधारणा की तलाश ही उचित प्रतीत नहीं होती। इसे कुछ सीमाओं के साथ प्राचीन भारत का एक अच्छा युग कहना अधिक युक्ति संगत है।

गुप्तकालीन सिक्के

गुप्त शासकों द्वारा सोने, चांदी, तांबा, आदि विविध धातुओं के सिक्के जारी किए गए इनमें सर्वाधिक मात्रा में सोने के सिक्के जारी किए जिसकी शुरुआत चन्द्रगुप्त प्रथम द्वारा की गयी आगे समुद्रगुप्त द्वारा 6 चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा 8 तथा कुमारगुप्त द्वारा लगभग 14 प्रकार के स्वर्ण सिक्के जारी किए। स्कन्द गुप्त द्वारा भी अधिक संख्या में स्वर्ण सिक्के चलाए गए। चांदी का सिक्का सर्वप्रथम चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा चलाया गया। तांबे का सिक्का रामगुप्त द्वारा चलाया गया।

भारत में हूण आक्रमण का प्रभाव

हूणों के आक्रमण का भारतीय जन-जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा। उनके आक्रमणों ने गुप्त साम्राज्य को गहरा आघात पहुँचाया। यद्यपि उत्तरी तथा उत्तरी पश्चिमी भागों में हूणों ने एक शती तक शासन किया। तथापि उन्होंने देश की स्थिरता तथा राजनैतिक संतुलन को कमजोर किया। उनकी नृशंसता तथा लूटपाट से भारतीय जन जीवन तथा

अर्थव्यवस्था को काफी क्षति उतानी पड़ी थी। भारतीय क्षेत्र से उनके हटने के बाद शताब्दी तक राजनैतिक एकता तथा आर्थिक सुरक्षा स्थापित नहीं की जा सकी। और उनके द्वारा अधिगृहीत क्षेत्र कुछ समय के लिये अराजकता एवं अव्यवस्था में डूब गये। उनके आक्रमण के परिणामस्वरूप पंजाब में गणतंत्रों का अस्तित्व भी सदा के लिए समाप्त हो गया।

हूणों के आक्रमण का भारतीय समाज के ऊपर भी प्रभाव पड़ा। हिन्दू समाज के ढोंचों में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। कालान्तर में हूण हिन्दू समाज में घुल-मिल गये तथा उन्होंने यहाँ के वंशों में वैवाहिक संबन्ध स्थापित कर लिया। इस संभावना से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि राजपूतों के कुछ राजवंशों में हूण रक्त का मिश्रण रहा हो।

हूण-आक्रमण का भारत की आर्थिक दशा पर भी बुरा प्रभाव पड़ा। देश की आर्थिक दशा बिगड़ गयी जैसा कि स्कन्द गुप्त तथा उसके उत्तराधिकारियों के सिक्कों में धातु की गिरावट से आभासित होता है। स्कन्दगुप्त के बाद तो स्वर्ण सिक्कों के निर्माण की परम्परा समाप्तप्राय हो गयी। हूणों ने नगरों को ध्वस्त किया तथा बौद्ध मठों को लूटा। ये संस्कृति तथा सम्पत्ति के केन्द्र थे। इससे आर्थिक पतन की गति और तेज हो गयी। हूणों ने मध्य एशिया के साथ भारत के व्यापार-वाणिज्य को भी क्षति पहुँचाई। व्यापारिक मार्ग आशान्तपूर्ण हो गये तथा अन्ततोगत्वा बन्द कर दिये गये।

हूणों के आक्रमण ने भारतीय साहित्य तथा कला को भी गहरा आघात पहुँचाया। मिहिरकुल के काल में तक्षशिला, कौशाम्बी, नालन्दा, पाटिलपुत्र जैसे प्राचीन नगर या तो ध्वस्त किये गये या उन्हें भारी क्षति पहुँचाई गयी। इसमें से कुछ विद्या के प्रमुख केन्द्र थे। बौद्ध विहार तथा स्तूप भारी संख्या में जला दिये गये जो साहित्य और कला के उत्कृष्ट प्रतीक थे। चीनी स्रोतों के अनुसार मिहिरकुल ने केवल गन्धार प्रदेश में ही 1600 स्तूपों तथा संचारामों को नष्ट कर दिया था।

इस प्रकार हूणों के आक्रमण ने भारतीय धन-जन को भारी नुकसान पहुँचाया था। यही कारण है कि भारतीय साहित्य तथा लोक-कथाओं में उनकी नृशंसात्मक कृतियों को दीर्घकाल तक याद किया जाता रहा। यह देश का सौभाग्य था कि यहाँ उनके पैर नहीं जम पाये तथा राजनैतिक दृष्टि से उन्हें विफलता का सामना करना पड़ा।

गुप्तोत्तर काल

परिचय:- गुप्तों के पतन के बाद भारत में एक बार पुनः छोटे राज्यों का दौर प्रारम्भ हुआ। गुप्तों के विरासत पर उनके अधिकांश सामंतों ने उत्तर भारत में नए राज्यों की स्थापना की इनमें उत्तरगुप्त, मौखरी, मैत्रक (गुजरात), वर्धन, गौड़, कामरूप, चालुक्य तथा पल्लव आदि मुख्य थे इन वंशों में से वर्धन वंश को सफलता मिली इस वंश के महान शासक हर्ष वर्धन (606-647) ने पुनः एक बार उत्तर भारत में एक बड़ी सत्ता की नींव रखी। कुछ समय के लिए पुनः गुप्तों की भांति राजनीतिक स्थायित्व कायम हुआ।

कन्नौज का मौखरि राजवंश

यशोधर्मन की मृत्यु के पश्चात् आर्यावर्त का शासन मौखरियों के अधिकार में आया। वस्तुतः परवर्ती गुप्तों के ही समान मौखरि भी चक्रवर्ती गुप्त वंश के सामन्त थे, तथा गुप्त-सत्ता के निर्बल होने पर उन्होंने भी अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी। मौखरि मूलतः गया जिले के निवासी थे। कालान्तर में उन्होंने कन्नौज में एक राज्य स्थापित कर लिया और उनके समय में मगध के स्थान पर कन्नौज राजनीतिक गतिविधियों का प्रमुख केन्द्र बन गया।

इतिहास के साधन:- मौखरिवंश का इतिहास हम साहित्य तथा पुरातत्त्व दोनों ही साधनों से ज्ञात करते हैं। इनका विवरण इस प्रकार है-

साहित्य:- इसके अन्तर्गत बाणभट्ट के हर्षचरित का उल्लेख किया जा सकता है। यह ग्रन्थ यद्यपि वर्धन वंश के इतिहास का विवरण प्रस्तुत करता है तथापि इसमें कुछ मौखरि शासकों का भी उल्लेख प्राप्त होता है। इससे हम अवन्तिवर्मा, ग्रहवर्मा आदि के काल की घटनाओं का विवरण प्राप्त करते हैं। वर्धन-मौखरि सम्बन्ध तथा मालव नरेश देवगुप्त द्वारा ग्रहवर्मा के वध की घटना का ज्ञान हर्षचरित से प्राप्त होता है।

पुरातत्त्व:- इसके अर्न्त अभिलेख तथा सिक्कों का उल्लेख किया जा सकता है। मौखरि राजवंश के इतिहास के लिए निम्नलिखित अभिलेख सहायक हैं-

1. **हरहा का लेख:-** उत्तर प्रदेश के बाराबंकी जिले में स्थित हरहा नामक स्थान से यह लेख मिला है। इसकी खोज 1915 ईस्वी में एच.एन. शास्त्री ने की थी। यह लेख मौखरि नरेश ईशानवर्मा के पुत्र सूर्यवर्मा द्वारा खुदवाया गया था। इसके अध्ययन से हम इस वंश के प्रथम चार राजाओं-हरिवर्मा, आदित्य वर्मा, ईश्वरवर्मा, तथा ईशानवर्मा के शासन काल की घटनाओं का ज्ञान प्राप्त करते हैं।
2. **जौनपुर का लेख:-** यह लेख जौनपुर की मस्जिद के दरवाजे पर खुदा हुआ है। इसमें इस वंश के प्रथम तीन शासकों- हरिवर्मा, आदित्यवर्मा, तथा ईश्वरवर्मा के नाम और उनके कार्यों का विवरण मिलता है।
3. **असीरगढ़ मुद्रालेख:-** यह असीरगढ़ (बराह) से प्राप्त एक ताम्रमुद्रा के ऊपर खुदा हुआ है तथा मौखरी वंश के पाँचवें शासक सर्ववर्मा के समय का है। इस मुद्रा के आधार पर कुछ विद्वान मौखरियों का प्रभाव-क्षेत्र दक्षिण भारत में सिद्ध करने का प्रयास करते हैं, किन्तु यह निष्कर्ष संदिग्ध है।
4. **बराबर तथा नागर्जुनी के लेख:-** गया जिले के बराबर तथा नागर्जुनी पहाड़ियों से मौखरिवंश के तीन लेख मिले हैं। इनमें तीन राजाओं-यज्ञवर्मा, शार्दूल वर्मा, तथा अनन्त वर्मा के नाम मिलते हैं। ये बिहार की मौखरि शाखा के थे।
5. **वडपा-यूप अभिलेख:-** राजस्थान प्रान्त के वडपा नामक स्थान से यज्ञयूप पर खुदे हुए कुछ लेख मिले हैं। इनसे राजस्थान की मौखरि शाखा का ज्ञान होता है।
6. **सोहनाग का लेख:-** देवरिया जिले (उ०प्र०) के सोहनाग नामक स्थान से यह लेख मिला है। इससे मौखरि-इतिहास सम्बन्धी कुछ बातें ज्ञात होती हैं।

मुद्राये: फैजाबाद जिले के भिठौरा नामक स्थान से मौखरि मुद्राओं का एक ढेर प्रकाश में आया है। कुछ मुद्राओं पर राजाओं के नाम के साथ-साथ तिथियों भी खुदी हुई हैं। इनसे तिथियों के निर्धारण में सहायता मिलती है।

उत्पत्ति: मौखरियों की उत्पत्ति तथा प्रारम्भिक इतिहास अभी तक अंधकारपूर्ण है। ऐसा प्रतीत होता है कि मौखरि लोग पूर्व-गुप्तयुग के गंगा घाटी के गणराज्यों में से एक थे। प्राचीन भारत में कई मौखरि कुल हुए जो विभिन्न भागों में शासन करते थे। उनकी एक शाखा दक्षिणी बिहार तथा दूसरी गंगा यमुना दोआब (राजधानी-कन्नौज) में शासन करती थी। कुषाणों के पतनोपरान्त इन दोनों शाखाओं ने अपनी अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी होगी। परन्तु गुप्तों की सम्राज्यवादी नीति ने पुनः उन्हें अधर में ढकेल दिया। पुराणों तथा प्रारम्भिक गुप्त-लेखों में मौखरियों का उल्लेख न होना इस बात का सूचक है कि उनका कोई राजनीतिक महत्व नहीं था। कनिष्क को गया से एक मुहर मिली है जिस पर मौर्यकालीन ब्राह्मी लिपि में 'मोखलिनम्' उत्कीर्ण है। इससे न केवल उनकी प्राचीनता सिद्ध होती है, अपितु यह भी सूचित होता है कि लिच्छवि आदि जातियों से समान मौखरियों का भी प्रारम्भ में अपना स्वायत्तशासी गणराज्य था। कालान्तर में उनकी इस व्यवस्था में परिवर्तन हो गया और परवर्ती गुप्तों के समय हम उन्हें राजतंत्र के रूप में संगठित पाते हैं।

मौखरि लेखों तथा साहित्यिक ग्रन्थों में मौखरि तथा 'मुखर' शब्दों का प्रयोग मिलता है। हर्षचरित्र में उन्हें मुखरवंश तथा कादम्बरी में मौखरिवंश कहा गया है। बराबर गुहा भिलेख में अन्नतवर्मा अपने कुल को मौखरिणाम् कुलम कहता है। हरहा लेख में मौखरि राजाओं को 'मुखरा' क्षितिशा कहा गया है। मैमट, वामन तथा जयादित्य ने मौखरि शब्द की व्युत्पत्ति पर प्रकाश डालते हुए बताया है कि वस्तुतः यह एक पितृमूलक शब्द है। स्पष्ट है कि मुखर नामक आदि पुरुष की वे सन्तान थे, अतः मौखरि कहे गये। उनके लेखों में उन्हें सूर्यवंशी क्षत्रिय कहा गया है। हरहा लेख में बताया गया है कि मौखरि ब्रह्मा के वरदान से उत्पन्न अश्वपति के सौ पुत्रों में एक थे।

मौखरि वंश का अन्तः-

नालन्दा मुद्रालेख तथा हर्षचरित्र के साक्ष्य से प्रकट होता है कि अवन्तिवर्मा का एक अन्य पुत्र 'सुच' (सुचन्द्रवर्मा) था। लगता है कि वह ग्रहवर्मा से काफी छोटा था तथा उसकी मृत्यु के समय अवश्य था। हर्ष की मृत्यु (लगभग 647 ईस्वी) के बाद सुचन्द्रवर्मा मौखरि-राज्य का शासक बना होगा। वह उत्तरगुप्तवंशी आदित्यसेन का समकालीन था। नालन्दा मुद्रालेख में उसे महाराजाधिराज कहा गया है। इस समय दोनों राजवंशों के सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण रहे होंगे। आर्यमंजुश्रीमूलकल्प में ग्रहवर्मा के बाद सुव्र नामक शासक का उल्लेख मिलता है। संभवतः 'सुव्र' तथा 'सुच' एक ही व्यक्ति हैं। उसने लगभग 664 ईस्वी तक राज्य किया। वह कन्नौज के मौखरिवंश का अन्तिम शासक था। एक नेपाली अभिलेख से पता चलता है कि भोगवर्मा नामक मौखरि राजा उत्तरगुप्त आदित्यसेन का दामाद था। सम्भव है वह सुचन्द्रवर्मा का पुत्र रहा हो तथा उसके बाद कुछ काल तक शासन किया हो उसे 'मौखरि कुल का मुकुटमणि' कहा गया है। मौखरिवंश का एक लेख हाल ही में वाराणसी जिले के इलिया गौंव से मिला है। जिसमें मनोरथवर्मा नामक राजा का उल्लेख है। संभवतः उसने भोगवर्मा के बाद शासन किया होगा।

इसके बाद मौखरियों का स्वतंत्र राजनीतिक अस्तित्व समाप्त हो गया।

मौखरि तथा उत्तरगुप्तों का सम्बन्ध

गुप्त साम्राज्य के विघटन के पश्चात् उत्तर भारत में जो शक्तियाँ स्वतंत्र हुईं उनमें कन्नौज के मौखरि तथा मगध और मालवा के उत्तर (परवर्ती अथवा मागध) गुप्त विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन दोनों ही राजवंशों का इतिहास बहुत कुछ अंशों में एक दूसरे से समता रखता है। प्रारम्भ में दोनों ही गुप्तवंश के सामन्त थे तथा उनके पारस्परिक सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण रहे। किन्तु जब दोनों ही स्वतंत्र हुए तो उनका मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध युद्ध में परिणत हो गया जो छठी शताब्दी ईस्वी के दितीयार्ध की उत्तर भारत की प्रमुख घटना है।

मैत्री सम्बन्ध: प्रारम्भ में मौखरि तथा उत्तरगुप्त दोनों ही गुप्तवंश के अधीन थे। तीन पीढ़ियों तक दोनों के सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण बने रहे। मौखरिवंश का प्रथम शासक हरिवर्मा था जो लगभग 510 ईस्वी से शासन करता था। उसका

समकालीन उत्तरगुप्तवंशी नरेश कृष्णगुप्त हुआ जो उत्तरगुप्तवंश का संस्थापक राजा था। इस समय गुप्त साम्राज्य पतनोन्मुख था। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों ही शासकों ने एक दूसरे के प्रभाव को बढ़ाने में सहयोग दिया होगा। असीरगढ़ के लेख से पता चलता है कि हर्षगुप्ता, जो उत्तरगुप्त नरेश कृष्णगुप्त की कन्या थी, का विवाह मौखरि नरेश हरिवर्मा के पुत्र आदित्यवर्मा के साथ सम्पन्न हुआ था। इस वैवाहिक सम्बन्ध से दोनों ही राजवंशों के सम्बन्ध और अधिक मृदुतापूर्ण हो गये होंगे।

मौखरिवंश का दूसरा राजा आदित्यवर्मा हुआ जो हरिवर्मा का पुत्र और उत्तराधिकारी था। उसका समकालीन उत्तरगुप्त शासक हर्षगुप्त था जो कृष्णगुप्त का पुत्र था। हर्षगुप्त की बहन का विवाह आदित्यवर्मा के साथ किया गया था। अतः दोनों ही शासकों के सम्बन्ध मैत्री पूर्ण रहे।

मौखरिवंश का तीसरा शासक ईश्वरवर्मा, अपने पिता आदित्यवर्मा के बाद गद्दी पर बैठा। उसका समकालीन उत्तरगुप्त नरेश जीवितगुप्त प्रथम हुआ जो हर्षगुप्त का पुत्र और उत्तराधिकारी था। असीरगढ़ मुद्रालेख से पता चलता है कि ईश्वरवर्मा का विवाह उपगुप्ता नामक कन्या से हुआ था जो उत्तरगुप्त नरेश हर्षगुप्त की पुत्री तथा जीवितगुप्त प्रथम की बहन थी। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रथम तीन राजाओं के काल तक (550 ईस्वी के लगभग तक) मौखरि तथा उत्तरगुप्त राजवंशों के सम्बन्ध मित्रतापूर्ण बने रहे। यद्यपि दोनों राजवंश अपनी-अपनी शक्ति का विस्तार करने में लगे हुये थे तथापि दोनों ने एक दूसरे के महत्व को समझा था। तीन पीढ़ियों तक दोनों राजवंश सामन्त स्थिति में थे जैसा कि उनकी उपाधियों से सूचित होता है।

संघर्षः— छठी शताब्दी के मध्य, मगध का शक्तिशाली गुप्त साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। इसके साथ ही उत्तर भारत में घोर अराजकता एवं अव्यवस्था फैल गयी। विभिन्न भागों में नई-नई शक्तियों ने अपनी स्वाधीनता घोषित कर दिया। इनमें मौखरि तथा उत्तरगुप्त भी थे। मौखरि राजवंश की सामन्त स्थिति से स्वतंत्र स्थिति में पहुँचाने वाला प्रथम शासक ईशानवर्मा था, जबकि उत्तरगुप्त ने कुमारगुप्त के नेतृत्व में अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दिया। दोनों ही शासकों ने महाराजाधिराज की उपाधि ग्रहण की तथा साम्राज्य विस्तार में एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी हो गये। अतः इस समय उनका तीन पीढ़ियों से चला आ रहा मैत्री सम्बन्ध संघर्ष में बदल गया। दोनों का उद्देश्य अपनी-अपनी शक्ति का विस्तार कर उत्तर भारत का चक्रवर्ती सम्राट बनना था।

मौखरि तथा उत्तरगुप्तों का प्रथम प्रत्यक्ष संघर्ष ईशानवर्मा तथा कुमारगुप्त के बीच हुआ। अफसड़ के लेख में इस संघर्ष का काव्यात्मक विवरण प्राप्त होता है जिसके अनुसार ईशानवर्मा की क्षीर सागर के समान विकराल सेना को कुमारगुप्त ने युद्ध-क्षेत्र में उसी प्रकार मथ डाला जिस प्रकार से देवासुर संग्राम में लक्ष्मी को प्राप्त करने के लिये मन्दराचल पर्वत के द्वारा क्षीरसागर मथा गया था। इन पक्तियों से स्पष्ट हो जाता है कि युद्ध में ईशानवर्मा की पराजय हुई तथा उसका परिणाम कुमारगुप्त के पक्ष में गया। आर० के० मुकर्जी तथा एन० राय² का विचार है कि इस युद्ध में कुमारगुप्त पराजित हुआ था, किन्तु इस प्रकार का निष्कर्ष लेख के साक्ष्य में मेल नहीं खाता। अभिलेख की भाषा से स्पष्ट है कि ईशानवर्मा पूर्णरूपेण पराजित किया गया। मौखरि लेखों में भी गुप्तों के ऊपर उसकी विजय का उल्लेख नहीं मिलता।

कुमारगुप्त की इस विजय ने मौखरियों की साम्राज्यवादी आशाओं पर पानी फेर दिया। कुमारगुप्त का मगध के ऊपर अधिकार हो गया तथा उत्तर भारत में उसकी प्रभुसत्ता को चुनौती देने वाला कोई नहीं रहा। अफसड़ के लेख से पता चलता है कि प्रयाग में उसने अपना प्राणान्त किया था। यह इस बात का सूचक है कि वह भी अधिकार में था।

ईशानवर्मा के पश्चात् उसका पुत्र सर्ववर्मा कन्नौज के मौखरिवंश की गद्दी पर बैठा। उधर उत्तरगुप्तों में दामोदरगुप्त ने अपने पिता कुमारगुप्त की मृत्यु के पश्चात् सिंहासन प्राप्त किया। ऐसा लगता है कि सर्ववर्मा ने अपने पिता की पराजय का बदला लेने के लिये अपने उत्तरगुप्त प्रतिद्वन्द्वी दामोदरगुप्त पर आक्रमण किया। अफसड़ के लेख में दोनों के बीच युद्ध का विर्णन मिलता है। जिसके अनुसार दामोदरगुप्त युद्ध-भूमि में मूर्छित हो गया। इस युद्ध के परिणाम के विषय में मतभेद है। के०सी० चट्टोपाध्याय ने भवभूति के उत्तरामचरित से उदाहरण देते हुए यह स्पष्ट किया है

कि यहाँ दामोदरगुप्त का मूर्छित होना सूचित होता है, मारा जाना नहीं। उनके अनुसार युद्ध में दामोदरगुप्त ही विजयी रहा। यद्यपि वह घायल होकर मूर्छित हो गया लेकिन शीघ्र ही जाग उठा। अभिलेख में ही कहा गया है कि उसने अनेक ब्राह्मण कन्याओं का विवाह करवाया तथा ब्राह्मणों को अग्रहार दिये। डी०सी० सरकार ने इस मत का खण्डन करते हुए बताया है कि यहाँ दामोदरगुप्त के मारे जाने से ही तात्पर्य है।

सर्ववर्मा के बाद उसका पुत्र अवन्तिवर्मा मौखरियों का राजा बना। उसका उत्तरगुप्त प्रतिद्वन्द्वी महासेनगुप्त था जो दामोदर का पुत्र था। यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है कि इन दोनों के सम्बन्ध किस प्रकार के थे। सुधाकर चट्टोपाध्याय का विचार है कि महासेनगुप्त मौखरिनेश अवन्तिवर्मा की अधीनता स्वीकार करता था। हर्षचरित से पता चलता है कि अवन्तिवर्मा एक शक्तिशाली राजा था। दूसरी ओर महासेनगुप्त को महाराजाधिराज नहीं कहा गया है जो उसकी अधीन स्थिति का सूचक है। ऐसा लगता है कि मौखरियों के विरुद्ध अपनी स्थिति मजबूत करने के लिये ही महासेनगुप्त ने अपनी बहन महासेनगुप्त का विवाह धानेश्वर के वर्धननरेश राज्यवर्धन प्रथम के साथ कर दिया। प्रभाकर वर्धन उसी का पुत्र था।

अवन्तिवर्मा के बाद उसका पुत्र ग्रहवर्मा कन्नौज के मौखरिवंश का राजा बना। इस समय तक मालवा में महासेनगुप्त की मृत्यु हो चुकी थी तथा वहाँ देवगुप्त नामक व्यक्ति ने अधिकार स्थापित कर लिया था। ग्रहवर्मा का विवाह वर्धननरेश प्रभाकर की कन्या राज्यश्री के साथ हुआ जिससे दोनों राजवंशों में मैत्री सम्बन्ध स्थापित हो गया। देवगुप्त ने अपनी स्थिति मजबूत करने के लिये बंगाल के गौड़ नरेश शशांक के साथ संधि कर लिया। हर्षचरित से पता चलता है कि प्रभाकरवर्धन के मरते ही देवगुप्त ने कन्नौज के ऊपर आक्रमण कर ग्रहवर्मा को मार डाला। ग्रहवर्मा कन्नौज के मौखरिवंश का अन्तिम राजा था। उसकी मृत्यु के साथ ही उसके राजवंश की स्वाधीनता का अन्त हो गया।

इस प्रकार छठी शताब्दी ईस्वी के द्वितीयार्ध में मौखरियों तथा उत्तरगुप्तों के बीच जो संघर्ष प्रारम्भ हुआ था उसकी समाप्ति हुई।

हर्ष का इतिहास के साधन

हर्षचरितः— इस ग्रन्थ की रचना सुप्रसिद्ध लेखक बाणभट्ट ने की थी तथा यह वर्द्धन इतिहास का प्रमुख स्रोत है। इसे ऐतिहासिक विषय पर गद्यकाव्य लिखने का प्रथम सफल प्रयास कहा जा सकता है। बाण 'हर्ष का दरबारी कवि था। हर्षचरित्र वास्तव में हर्ष के राज्य का ही इतिहास है। हर्षचरित्र के अध्ययनों से हर्ष के समय के लोगों के धार्मिक, आर्थिक तथा राजनीतिक जीवन का पता चलता है। हर्ष के प्रारम्भिक जीवन, राज्यारोहण, सैनिक अभियान के साथ ही साथ यह ग्रन्थ हर्षकालीन भारत की राजनीति एवं संस्कृति पर भी प्रचुर प्रकाश डालता है।

कादम्बरी— यह भी बाणभट्ट की ही कृति है। यह संस्कृत साहित्य का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास कहा जा सकता है। इसके अध्ययन से हम हर्षकालीन सामाजिक तथा धार्मिक जीवन का ज्ञान प्राप्त करते हैं।

आर्यमंजुश्रीमूलकल्पः— यह एक प्रसिद्ध महायान बौद्ध ग्रन्थ है। सर्वप्रथम गणपति शास्त्री ने 1925 ईस्वी में इसे प्रकाशित किया था। इसमें एक हजार श्लोक हैं जिनके अन्तर्गत ईसा पूर्व सातवीं शताब्दी से लेकर आठवीं शताब्दी ईस्वी तक का प्राचीन भारत का इतिहास वर्णित है। इसमें हर्ष के लिये केवल 'ह' शब्द का प्रयोग किया गया है।

हर्ष के ग्रन्थः— कहा जाता है कि रत्नावलि, नागानन्द और प्रियदर्शिका नाटक स्वयं हर्ष ने ही लिखे थे। रत्नावलि और प्रियदर्शिका प्रेम तथा दरबार के षड्यन्त्रों से सम्बन्धित हैं उन्हें हर्ष के सुखान्त नाटक कहा गया है। नागानन्द में हर्ष की दानवीरता का चित्रण है। इससे तत्कालीन संस्कृति से सम्बन्धित कुछ बातों का ज्ञान प्राप्त होता है।

विदेशी विवरण

हुएनसांग का विवरण— यह प्रसिद्ध चीनी यात्री हर्ष के समय में भारत की यात्रा पर आया तथा उसने यहाँ सोलह वर्षों तक निवास किया। उसका यात्रा विवरण सी-यू-की नाम से प्रसिद्ध है। यह तत्कालीन राजनीति तथा संस्कृति का अध्ययन करने के लिये अत्यन्त उपयोगी है। विदेशी विवरण में इसका वही स्थान है जो साहित्य में हर्षचरित का।

हुएनसांग की जीवनी— इसकी रचना हुएनसांग के मित्र ह्वी-ली ने की थी। इससे भी हर्षकालीन इतिहास से सम्बन्धित कई महत्वपूर्ण बातें होती हैं।

इत्सिंग का विवरण— इत्सिंग नामक एक अन्य चीनी यात्री का विवरण भी हर्षकालीन इतिहास के अध्ययन के लिए उपयोगी है।

अभिलेख

बांसखेड़ा का लेख— यह 1894 ईस्वी में उत्तर प्रदेश के शाहजहाँपुर जिले में स्थित बांसखेड़ा नामक स्थान से मिला है। जिसमें हर्ष संवत् 22 अर्थात् 628 ईस्वी की तिथि अंकित है। इससे पता लगता है कि हर्ष ने अहिच्छत्र भुक्ति के अंगदीया विषय के मार्कटसागर नामक ग्राम को बालचन्द्र तथा भट्टस्वामी नाम के दो भारद्वाज गोत्रीय ब्राह्मणों को दान दिया था। इससे हर्षकालीन शासन के अनेक प्रदेशों तथा पदाधिकारियों के नाम ज्ञात होते हैं। साथ ही साथ राज्यवर्द्धन द्वारा मालवा के शासक देवगुप्त पर विजय तथा अन्ततः गौड़ नरेश शशांक द्वारा उसकी हत्या की जानकारी भी इस लेख से मिलती है।

मधुबन का लेख— मधुबन, उत्तर प्रदेश के मऊ (आजमगढ़) जिले की घोषी तहसील में स्थित है। यहाँ से हर्ष संवत् 25 अर्थात् 631 ईस्वी का लेख मिला है। इसमें हर्ष द्वारा श्रावस्ती भुक्ति के सोमकुण्डा नामक ग्राम को दान में देने का विवरण है।

ऐहोल का लेख— यह चालुक्य नरेश पुलकेशिन द्वितीय का है जिसकी तिथि 633-34 ईस्वी है। इसमें हर्ष तथा पुलकेशिन के बीच होने वाले युद्ध का वर्णन मिलता है, इस लेख की रचना पुलकेशिन के दरबारी कवि रविकीर्ति ने की थी।

मुहरें एवं मुद्रा— हर्ष की दो मुहरें नालन्दा तथा सोनपत (दिल्ली के समीप सोनीपत नामक स्थान) से प्राप्त होती हैं। पहली मिट्टी तथा दूसरी तांबे की है। इस लेख में महाराज राज्यवर्द्धन प्रथम के समय से लेकर 'हर्षवर्द्धन' तक की वंशावली मिलती है। सोनपत मुहर में ही हमें हर्ष का पूरा नाम 'हर्षवर्द्धन' प्राप्त होता है। के.डी. वाजपेयी ने हर्ष का एक स्वर्ण सिक्का प्रकाशित किया है। इसके मुख भाग पर परमभट्टारकमहाराजाधिराज श्री हर्षदेव अंकित है तथा पृष्ठ भाग पर 'उमामाहेश्वर' की आकृति है।

ह्वेनसांग का भारत वर्णन

ह्वेनसांग एक चीनी यात्री था जिसने 630 और 644 ई. के बीच भारत-यात्रा की। उसे "यात्रियों में राजकुमार, "नीति का पण्डित" और वर्तमान शाक्यमुनि कहा जाता है। वह गुप्त रूप से वह अपने देश से निकल आया। ताशकन्द, समरकन्द और बल्ख होते हुए 630 ई. में वह गान्धार पहुँचा। वहाँ से वह कश्मीर गया जहाँ वह दो वर्ष रहा। वहाँ से वह पंजाब आया और आगे बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित स्थानों, जैसे कपिलवस्तु, बनारस, गया और कुशीनगर की यात्रा की। नालन्दा विश्वविद्यालय में वह काफी समय तक रहा। कन्नौज के हर्ष ने उसे निमन्त्रण दिया तथा काफी सम्मान दिया।

सातवीं शती के पूर्वार्द्ध में भारत में जीवन के समाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक और प्रशासनिक पक्षों के विषय में यह हमें पर्याप्त जानकारी प्रदान करता है। इस ज्ञान का महत्व इसलिए है कि यह एक ऐसे व्यक्ति द्वारा दिया गया है जो भारत में लम्बी अवधि तक रहा, जो देश की भाषा को जानता था और जिसने वहीं लिखा जो उसने स्वयं अपनी आँखों से देखा।

ह्वेनसांग हमें बताता है कि लोगों का जीवन-स्तर बहुत ऊँचा था। सोने और चांदी दोनों के सिक्के प्रचलित थे। भूमि उर्वर थी और उत्पादन बहुत अधिक था। विभिन्न प्रकार की सब्जियों तथा फलों की उपज की जाती थी। लोगों के भोजन का मुख्य आधार था गेहूँ की चपातियाँ, भुने हुए दाने, चीनी, घी, और दूध के पदार्थ। कुछ अवसरों पर मछली, मृग और भेड़ का मांस भी खाया जाता था। गाय तथा कुछ जंगली जानवरों का मांस पूर्णतः वर्जित था।

कई नए नगर बन गए थे और पुराने नगर समाप्त हो रहे थे। पाटिलपुत्र अब उत्तरी भारत का प्रमुख नगर नहीं रहा था। और उसका स्थान कन्नौज ने ले लिया था। कन्नौज में सैकड़ों संघाराम और 200 हिन्दू मन्दिर थे। कन्नौज की समृद्धि उसके ऊँचे भवनों, सुन्दर उद्यानों, स्वच्छ जल के तालाबों और दुर्लभ वस्तुओं के अजायबघरों में थी। प्रयाग एक महत्वपूर्ण स्थान बन चुका था। किन्तु श्रावस्ती अब नष्ट हो रहा था और कपिलवस्तु में केवल 30 भिक्षु थे। नालन्दा और वलभी जैसे— स्थानों में बौद्ध धर्म का जोर था।

हेयनसांग हमें बताता है कि रेशम, ऊन और सूत के कपड़े बनाने की कला अत्यन्त परिष्कृत थीं। कौशेय कपड़ा रेशम और सूत से बनाया जाता था। सन, जूट से प्राप्त वस्तुओं से क्षौम कपड़ा या लिनेन बनाया जाता था। तीसरी प्रकार की पहनने की वस्तु थीं कम्बल। चौथी प्रकार की चीज थी किसी जंगली जानवर की ऊन का बना कपड़ा जो बहुत बढ़िया, मुलायम और आसानी से कातने और बुनने योग्य होता था।

हेयनसांग हमें बताता है कि अन्तर्जातीय विवाह नहीं होते थे। एक ही जाति के विभिन्न वर्गों में भी विवाह सीमित थे। भोजन तथा विवाह की दृष्टि से विभिन्न जातियों में नियन्त्रण बाधक थे। विधवा विवाह की प्रथा नहीं थी। उच्च वर्गों में पर्दे की प्रथा होती थी। शिक्षा धार्मिक थी और उसे विहारों के माध्यम से प्रसारित किया जाता था। धार्मिक पुस्तकें लिखी हुई थीं। किन्तु वेदों को मौखिक रूप से प्रचलित रखा गया था और उन्हें कागज या पत्तों पर नहीं लिखा जाता था। उस समय प्रचलित लिपि को ब्राह्मी कहा जाता था जो ब्रह्मा के मुख से निःसृत मानी जाती थी। संस्कृत विद्वान वर्ग की भाषा थीं संस्कृत व्याकरण को विधिवत् नियमों से जकड़ दिया गया था। एक व्यक्ति की शिक्षा नौ वर्ष की आयु से तीस वर्ष की आयु तक चलती थी। जब शिष्य तीस वर्ष का हो जाते हैं तो उनकी बुद्धि परिपक्व होने पर तथा शिक्षा सम्पूर्ण होने पर सबसे पहले वे अपने अध्यापकों की कृपा के लिए उन्हें दक्षिणा देते हैं। उसने नालन्दा विश्वविद्यालय का विस्तृत वर्णन किया है। उसने विभिन्न विषयों पर वाद-विवाद के ढंग का भी उल्लेख किया है। गोष्ठी में भाग लेने कोई व्यक्ति यदि अपनी परिष्कृत भाषा, सूक्ष्म खोज, गहन चिन्तन और अकाट्य तर्क से विशिष्टता प्राप्त कर ले तो बहुमूल्य आगूषणों से सुज्जित हाथी पर बैठा कर उसके प्रशंसक उसे विहार के द्वार ले जाते थे। इसके विपरीत यदि एक व्यक्ति वाद-विवाद में हार जाए या अश्लील वाक्य प्रयुक्त करे या तर्क के नियमों का उल्लंघन करे तो उसके ऊपर कीचड़ लगाकर उसे खाई में फेंक दिया जाता था।”

शासन पद्धति हितकारी सिद्धांतों पर आधारित है। परिवारों का पंजीयन नहीं किया जाता था। लोगों को अनिवार्य परिश्रम नहीं करना पड़ता था। हर्ष ने अपनी आय को चार भागों में बांटा था—पहला भाग राज्य-कार्य चलाने के लिए है। दूसरा भाग मन्त्रियों तथा कर्मचारियों को वेतन देने के लिए है। तीसरा भाग प्रवीण व्यक्तियों को पुरस्कार देने के लिए है। चौथा भाग धार्मिक सम्प्रदायों को दान देने के लिए है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी वस्तुओं को शान्तिपूर्वक अपने पास रखता है और निर्वाह के लिए सभी खेती करते हैं। जो किसान अपनी भूमि पर खेती करते हैं वे उत्पादन का छठा भाग शुल्क के रूप में देते हैं। व्यापार करने वाले व्यक्ति अपने व्यवसाय के कारण इधर-उधर यात्रा करते हैं। थोड़ा सा धन देने पर नदियां और चौकिया यात्रियों के लिए खोल दी जाती हैं। सार्वजनिक कार्यों के लिए श्रम की आवश्यकता होने पर श्रमिकों को लगाया जाता है लेकिन उन्हें इसके लिए परिश्रमिक दिया जाता है।

हेयनसांग के अनुसार राज्य के सभी कार्यों का रिकार्ड रखा जाता था। सार्वजनिक विपत्ति और भाग्य के महत्वपूर्ण कार्यों का विस्तृत विवरण लिखा जाता था। हर्ष ने रिकार्ड तथा पुरालेखों का एक अलग विभाग खोल दिया था।

हर्ष ने एक बहुत बड़ी सेना रखी हुयी थी। उसमें पैदल सैनिकों की संख्या 50000 थी। घुड़सेना में एक लाख घुड़सवार थे। हाथियों की संख्या लगभग 60000 थी। युद्ध रथ सेना का महत्वपूर्ण अंग नहीं थे। सेना सीमाओं की रक्षा करती थी और अराजकता का दमन करती थी। सेना रात्रि में राजमहल के चारों ओर पहरा देती, थीं सैनिकों को आवश्यकता के अनुसार भर्ती किया जाता था। उन्हें निश्चित वेतन का आश्वासन दिया जाता था। और भर्ती खुले-आम की जाती थी।

आर्थिक दशा—

हर्षकालीन भारत की आर्थिक दशा के विषय में हमें बाण के ग्रन्थों, चीनी स्रोतों तथा तत्कालीन लेखों से जानकारी मिलती है। उस समय देश की आर्थिक दशा उन्नत थी। कृषि जनता की जीविका का मुख्य आधार थी। अन्न तथा फलों का उत्पादन प्रभूत मात्रा में होता था। भूमि का अधिकांश भाग सामन्तों के हाथ में था। कुछ भूमि ब्राह्मणों को दान के रूप में दी जाती थी। इसे ब्रह्मदेय कहा जाता था। मधुबन तथा बांसखेड़ा के लेखों में हर्ष द्वारा ग्राम दान में दिये जाने का विवरण मिलता है। कृषि के लिये सिंचाई की उत्तम व्यवस्था थी। सिंचाई के साधन के रूप में घटियंत्र (जलपम्प) का उल्लेख मिलता है।

कृषि के अतिरिक्त वाणिज्य, व्यवसाय, उद्योग-धन्धे तथा व्यापार भी उन्नति पर थे। व्यापार-वाणिज्य का कार्य श्रेणियों द्वारा होता था। विभिन्न व्यवसायियों की अलग-अलग श्रेणियाँ होती थी। हर्षचरित्र में उल्लेख मिलता है कि राज्यश्री के विवाह के समय निपुण कलाकारों की श्रेणियों राजमहल को सजाने के निमित्त बुलायी गयी थीं। प्रमुख स्थानों पर बाजारें लगती थी तथा वस्तुओं का क्रय-विक्रय होता था। कुछ नगर अपने व्यापार के कारण काफी समृद्ध हो गये थे। हुएनसांग बताता है कि थानेश्वर की समृद्धि का प्रधान कारण वहाँ का व्यापार ही था। मथुरा सूती वस्त्रों के निर्माण के लिए प्रसिद्ध था। उज्जयिनी तथा कन्नौज भी आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध थे। बाण ने उज्जयिनी के निवासियों को करोड़पति बताया है। वहाँ के बाजारों में बहुमूल्य हीरे-जवाहरात एवं मणियों बिक्री के लिए सजी रहती थी। देश में सोने तथा चांदी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थे।

देश में आन्तरिक तथा बाह्य दोनों ही प्रकार का व्यापार होता था। इसके लिये थल तथा जल मार्गों का उपयोग किया जाता था। कपिश का वर्णन करते हुए हुएनसांग लिखता है कि वहाँ भारत के प्रत्येक कोने से व्यापारिक सामग्रियाँ पहुँचायी जाती थी। यहाँ से भारतीय व्यापारी पश्चिमी देशों को जाते थे। व्यापारिक माल कश्मीर से होकर मध्य एशिया तथा चीन तक पहुँचाया जाता था। पूर्वी भारत में ताम्रलिप्ति तथा पश्चिमी भारत में भड़ौच सुप्रसिद्ध व्यापारिक बन्दरगाह थे। चीन तथा पूर्वी दीप समूहों के साथ भारत का घनिष्ठ व्यापारिक सम्बन्ध था। ताम्रलिप्ति से जहाज मलय प्रायद्वीप तक जाते थे।

यद्यपि साहित्य में हर्षकालीन भारत की समृद्धि का चित्रण है। तथापि अहिच्छत्र तथा कौशाम्बी जैसे नगरों की खूदाईयों के उत्तरगुप्तकालीन स्तर आर्थिक दृष्टि से उनके पतन की सूचना देते हैं।

शिक्षा और साहित्य

हर्षवर्धन ने शिक्षा एवं साहित्य की उन्नति को पर्याप्त प्रोत्साहन प्रदान किया। पूरे देश में अनेक गुरुकुल, आश्रम एवं विहार थे जहाँ विद्यार्थियों को विविध विद्याओं की शिक्षा दी जाती थी। भारत की साहित्यिक परम्परा में कवि के रूप में हर्ष को सत्रहवीं शती तक स्मरण किया गया है। ग्यारहवीं शती के कवि सोड़ढल ने उसे वाणी (काव्य) का हर्ष कहा है। जयदेव ने हर्ष को भास, कालिदास, बाण, मयूर, आदि कवियों की समकक्षता में रखते हुये उसे 'कविताकामिनी का साक्षात् हर्ष' निरूपित किया है। भारतीय साहित्य के अतिरिक्त चीनी यात्री इत्सिंग ने भी हर्ष के विद्या प्रेम की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि उसने जीमूतवाहन की कथा के आधार पर एक नाटक ग्रन्थ लिखा तथा बाद में उसका मंचन करवाया। इससे उसकी लोकप्रियता काफी बढ़ गयी थी। इस नाटक से तात्पर्य नागानन्द से लगता है।

प्रियदर्शिका चार अंकों का नाटक है जिसमें वत्सराज उदयन के अन्तःपुर की प्रणयकथा का वर्णन हुआ है। रत्नावली में भी चार अंक हैं तथा यह नाटक वत्सराज उदयन तथा उसकी रानी वासदत्ता की परिचायिका नागरिका की प्रणय-कथा का बड़ा ही रोचक वर्णन करता है। नागानन्द बौद्ध धर्म से प्रभावित रचना है और इसमें पांच अंक हैं। इस नाटक में जीमूतवाहन नामक एक विद्याधर राजकुमार के आत्महत्या की कथा वर्णित है।

हर्ष के दरबार में अनेक विद्वान कवि एवं लेखक निवास करते थे। इनमें बाणभट्ट, मयूर तथा मातंगदिवाकर के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। बाणभट्ट उसके दरबारी कवि थे। उन्होंने हर्षचरित तथा कादम्बरी की रचना की।

मयूर ने सूर्य-शतक नामक एक सौ श्लोकों का संग्रह लिखा। मातंगदिवाकर की किसी भी रचना के विषय में हमें ज्ञात नहीं है। कुछ विद्वान पूर्वमीमांसा के प्रकाण्ड विद्वान कुमारलिभट्ट को भी हर्षकालीन मानते हैं।

हर्ष के समय में नालन्दा विश्वविद्यालय महायान बौद्धधर्म की शिक्षा का प्रधान केन्द्र था। मूलतः नालन्दा की स्थापना गुप्तशासक कुमारगुप्त प्रथम (415-445 ईस्वी) के समय हुई थी। यह लगभग एक मील लम्बा तथा आधा मील चौड़ा था। इसके बीच में आठ बड़े कमरे तथा व्याख्यान के लिए 300 छोटे कमरे बने थे। यहाँ तीन भवनों में स्थित धर्मगङ्गा नामक विशाल पुस्तकालय था। नालन्दा से प्राप्त एक लेख में यहाँ के भवनों के भव्य एवं गगनचुम्बी होने का प्रमाण मिलता है। हर्ष के समय नालन्दा विश्वविद्यालय अपनी उन्नति की पराकाष्ठा पर था। आचार्य शीलभद्र हर्ष के समय यहाँ के कुलपति थे। हर्ष ने एक सौ ग्रामों की आय इसका खर्च चलाने के लिये प्रदान किया तथा यहाँ लगभग 100 फीट ऊँचा पीतल का एक विहार बनवाया था।

हर्ष का मूल्यांकन—

हर्षवर्द्धन एक महान विजेता, कुशल प्रशासक, विद्वान एवं विद्या का उदार संरक्षक था। उसकी प्रतिभा बहुमुखी थी। अशोक और कनिष्क के समान उसने भी बौद्ध धर्म को राज्याश्रय प्रदान किया। समुद्रगुप्त के समान वह एक नीति-निपुण सम्राट था। पणिकर की मान्यता है, कि "हर्ष की तुलना प्रायः अशोक से की जाती है, किन्तु उसमें केवल बाहरी समानता के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। यद्यपि दोनों बौद्ध धर्म के संरक्षक थे। किन्तु प्रियदर्शी की धार्मिक प्रचण्डता और प्रचार के जोश और हर्ष की विशाल उदारता में कोई समानता नहीं है। बौद्ध धर्म अपनाने के बाद अशोक ने अपना सारा जीवन धर्म के प्रचार में लगाया और भिन्न-धर्मियों के विचारों में कभी हस्तक्षेप नहीं किया। इसके विपरीत हर्ष ने अपने दरबार में धार्मिक वाद-विवाद में एक अनुरागी के अतिरिक्त कोई रुचि न ली और दान के अतिरिक्त अन्य किसी ढंग से भी अपने धर्म की सहायता करने का प्रयत्न न किया। अशोक की अपेक्षा अकबर से तुलना अधिक उपयुक्त है। महान मुगल सम्राट की भांति हर्ष ने सबको धार्मिक सहिष्णुता प्रदान की। सभी धर्मों के मुख्य विद्वानों से विवाद किए और उसकी तरह धर्म की ऊँची पुकार के प्रति विरक्त था। यह हर्ष का गौरव था कि वह चंद्रगुप्त मौर्य से होने वाली उन हिन्दू शासकों की लम्बी पंक्ति का अन्तिम शासक था। जिनके समय में संसार ने सुव्यवस्थित और शक्तिशाली राज्य को देखा। इसमें कोई संदेह नहीं कि शासक, कवि और धार्मिक समुत्साही के रूप में हर्ष को भारतीय इतिहास में उच्च स्थान प्राप्त है। यद्यपि हर्ष न तो अशोक के समान महान धर्म-प्रचारक बन पाया और न ही समुद्रगुप्त के समान अजेय योद्धा ही, तथापि उसने इन्हीं दोनों राजाओं के समान इतिहासकारों को अपनी ओर आकर्षित किया है। जिस समय वह थानेश्वर का राजा हुआ उसकी आयु केवल सोलह वर्ष की थी। उसके चारों ओर कठिनाईयों के बादल मंडरा रहे थे। राज्यवर्द्धन की हत्या, सामन्तों के विद्रोह आदि ने मिलकर उसकी स्थिति अत्यन्त संकटपूर्ण कर दी थी। परन्तु अपनी योग्यता और पराक्रम के बल पर उसने कठिनाईयों के बीच से अपना मार्ग प्रशस्त किया तथा उत्तर भारत के एक बड़े भूभाग का चक्रवर्ती शासक बन बैठा। वह एक प्रजावत्सल सम्राट था। जिसका हृदय गरीबों एवं अनाथों के लिए द्रवित हो उठता था। प्रयाग के पंचवर्षीय समारोहों में वह दिल खोलकर धन लुटाता था।

हर्ष एक उच्चकोटि का विद्वान था। उसने शिक्षा और साहित्य की उन्नति को अत्यधिक प्रोत्साहन दिया। वह धर्म-सहिष्णु सम्राट था। और इस रूप में ब्राह्मणों तथा बौद्धों का सम्मान करता था। गुप्त सम्राज्य के विघटन के बाद भारत में फैली हुई अराजकता एवं अव्यवस्था का अन्त कर हर्ष ने देश की सांस्कृतिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त किया। हर्ष के बाद शासन करने वाले कन्नौज नरेश यशोवर्मा, कश्मीरनरेश ललितादित्य, प्रतिहारनरेश मिहिर भोज तथा

महेन्द्रपाल एवं पालवंशी शासक धर्मपाल आदि का सम्राज्य न तो हर्ष के साम्राज्य के समान था और न ही वे महानता में हर्ष के समान थे। हर्ष महान् विजेता था। इसका प्रमाण उस विशाल क्षेत्र से मिलता है जिसे उसने अपने अधिकार में लिया।

हर्ष आदर्श शासक था। छनूसांग बताता है कि "वह बहुत परिश्रमी था और सत्कार्यों में नींद और भोजन भूल जाता था"। उदारता और दान में हर्ष का कोई सानी नहीं था। दानशीलता के लिए हर्ष को भारतीय हातिम कहा गया है।

हर्षकालीन प्रशासन/राजव्यवस्था

हर्षकालीन प्रशासन में निरकुश राजतंत्रात्मक विशेषताओं के साथ सामंती विशेषताओं का मेल दिखता है। इस काल में धार्मिक वर्गों (ब्राह्मण, बौद्ध) के साथ-साथ अधिकारियों को भी वेतन के रूप में भूमि अनुदान देना आरम्भ किया गया फलतः प्रशासन में सामंती प्रवृत्तियाँ प्रबल हुयी। मुख्य तौर पर हर्ष कालीन प्रशासन को परिसंघीय (केन्द्र के साथ-साथ स्थानीय स्वतन्त्रता) के रूप में समझा जा सकता है।

केन्द्रीय प्रशासन— शासक प्रशासन का सर्वोच्च केन्द्र था। शासक बड़ी-बड़ी उपाधियाँ ग्रहण करता था। हर्ष को महाराजधिराज, परमभट्टारक आदि बड़ी-बड़ी उपाधियाँ लगाते हुए देखा जा सकता है। शासको को सहायता देने के लिए मंत्रिपरिषद तथा विभिन्न अधिकारियों की चर्चा मिलती है। हर्ष चरित्र में प्रधानमंत्री को मुख्य सलाहकार बतलाया गया है। महासंधिविग्रहिक (युद्ध एवं शांति का मंत्री), महाबलाधिकृत (सैन्य प्रमुख), कुमारामात्य (युवराज) वट्ट और भट्ट (कानूनी अधिकारी) महाप्रतिहार (दरबार की सुरक्षा करने वाला) अक्षरपटलिक (प्रमुख लेखाकार) आदि की सूचना मिलती है।

राजस्व प्रशासन— राज्य की आय का मुख्य स्रोत भूमिकर था। सामान्यतः यह $\frac{1}{6}$ था। अन्य करों में हिरण्य, धान्य, चुंगी आदि की चर्चा मिलती है। भोगिक कर वसूलने के लिए तथा पुष्तापाल जमीन का हिसाब रखने वाले प्रमुख अधिकारी थे। आय के साथ व्यय की थी जानकारी मिलती है हर्ष द्वारा अपनी आय को 4 भागों में बाँटकर खर्च किया जाता था।

प्रांतीय व स्थानीय प्रशासन— हर्षकालीन प्रत्यक्ष शासित क्षेत्रों को प्रांतों व जिलों में बाँटा गया था जिसमें सबसे नीचे गांव आते थे। प्रांत भुक्ति कहलाते थे हर्ष के समय कई भुक्तियों की चर्चा मिलती है। जिसमें श्रावस्ती कौशाम्बी पुण्यवर्धन (उडीसा) आदिछत्र आदि थे। शंतपतियों को उपरिक, महाराज, गोप्ता, आदि कहा जाता था। जिले (विषय) का प्रमुख विषयपती होता था। जिसकी नियुक्ति प्रांत पतियों द्वारा की जाती थी। जिलों के प्रभारी अधिकारी केन्द्र तथा स्थानीय प्रशासन के बीच संपर्क सूत्र कायम करते थे सबसे नीचले स्तर पर ग्रामीण प्रशासन आता था ग्रामीण मुखिया महत्तर गांव में प्रमुख अधिकारी था।

सामंती लक्षण— हर्षकालीन भारत सामंती प्रवृत्तियों के प्रसार के रूप में जाना जाता है। मुख्य शासक की आधीनता में इस समय सामंत तमाम अधिकारों से युक्त होकर कार्य करते थे। खुद बाणभट्ट ने सामंतों के 6 प्रकार सामंत महासामंत, प्रतिसामंत बतलाए हैं। हर्ष की सेना को सामंती सेना से मिलकर बनी होने की सूचना मिलती है। हर्ष द्वारा अधिकारियों को भी नगद वेतन के बदले भूमि अनुदान दिए गए इससे सामंती प्रवृत्तियों में वृद्धि हुयी हर्ष के समय सामंतों को अपने क्षेत्रों में विविध अधिकार (राजस्व संग्रहण, कानूनी एवं सैन्य) प्रदान किए गए थे। इस प्रकार विकेन्द्रीकरण हर्षकालीन प्रशासन की एक महत्वपूर्ण विशेषता थी।

हर्षकालीन समाजिक जीवन

हर्षकालीन समाज वर्णाश्रम व्यवस्था पर आधारित था। परम्परागत चारों वर्णों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के अतिरिक्त समाज में अन्य अनेक जातियाँ एवं उपजातियाँ थी। ब्राह्मणों का समाज में प्रतिष्ठित स्थान था। हर्षचरित्र से पता चलता है कि स्वयं हर्ष उनका बड़ा सम्मान करता था। इस समय वैश्यों एवं शूद्रों के हाथ में भी राजनीतिक शक्ति आ गयी थी। हर्ष स्वयं वैश्य जाति का था। सिन्धु देश का शासक शूद्र था। जनसंख्या का एक बड़ा भाग अछूत समझा जाता था। हुएनसांग कसाई, मछुआरे, जल्लाद, भंगी आदि जातियों के नाम गिनाता है जो अछूत थी। वे नगरों और कस्बों के बाहर रहते थे। अन्तर्जातीय विवाह होते थे। स्वयं हर्ष की बहन राज्यश्री, जो वैश्य थी, कन्नौज के मौखरिवंश (क्षत्रिय) में ब्याही गयी थी। पुनर्विवाह नहीं होते थे तथा सतीप्रथा का प्रचलन था। हर्षचरित्र से पता चलता है कि हर्ष की माता यशोमती सती हो गयी थी। राज्यश्री भी चिता बनाकर जलने जा रही थी लेकिन हर्ष ने उसे बचा लिया। कुलीन परिवार के लोग कई पत्नियों रखते थे। बाल विवाह का प्रचलन था। इससे ऐसा लगता है कि कन्याओं को पर्याप्त शिक्षा नहीं मिल पाती होगी। केवल कुलीन परिवार की कन्याएँ ही शिक्षित होती थी। कहीं-कहीं पर्दाप्रथा का भी प्रचलन था। सामान्यतः लोगों का जीवन सुखी और आमोदपूर्ण था। हुएनसांग हर्षकालीन भारतीयों के भोजन तथा वस्त्रों का भी उल्लेख करता है। लोग शाकाहारी तथा मांसाहारी दोनों प्रकार के भोजन करते थे। हुएनसांग के अनुसार भेड़ तथा हरिण का मांस एवं मछलियाँ खाई जाती थी। गेहूँ तथा चावल का प्रयोग अधिक मात्रा में होता था। कुछ लोग मदिरा का भी सेवन करते थे। साधारणतः भारतीयों को श्वेत वस्त्र प्रिय थे। स्त्री तथा पुरुष दोनों ही आभूषण धारण करते थे।

* * * * *

Dhyeya IAS Now on Telegram

We're Now on Telegram



Join Dhyeya IAS Telegram

Channel from the link given below

"https://t.me/dhyeya_ias_study_material"

You can also join Telegram Channel through
Search on Telegram

"Dhyeya IAS Study Material"

Join Dhyeya IAS Telegram Channel from link the given below

https://t.me/dhyeya_ias_study_material

नोट : पहले अपने फ़ोन में टेलीग्राम App Play Store से Install कर ले उसके बाद लिंक में क्लिक करें जिससे सीधे आप हमारे चैनल में पहुँच जायेंगे।

You can also join Telegram Channel through our website

www.dhyeyaias.com

www.dhyeyaias.in



Address: 635, Ground Floor, Main Road, Dr. Mukherjee Nagar, Delhi 110009
Phone No: 011-47354625/ 26 , 9205274741/42, 011-49274400

Subscribe Dhyeya IAS Email Newsletter

(ध्येय IAS ई-मेल न्यूजलेटर सब्सक्राइब करें)

जो विद्यार्थी ध्येय IAS के व्हाट्सएप ग्रुप (Whatsapp Group) से जुड़े हुये हैं और उनको दैनिक अध्ययन सामग्री प्राप्त होने में समस्या हो रही है | तो आप हमारे ईमेल लिंक Subscribe कर ले इससे आपको प्रतिदिन अध्ययन सामग्री का लिंक मेल में प्राप्त होता रहेगा | **ईमेल से Subscribe करने के बाद मेल में प्राप्त लिंक को क्लिक करके पुष्टि (Verify) जरूर करें** अन्यथा आपको प्रतिदिन मेल में अध्ययन सामग्री प्राप्त नहीं होगी |

नोट (Note): अगर आपको हिंदी और अंग्रेजी दोनों माध्यम में अध्ययन सामग्री प्राप्त करनी है, तो आपको दोनों में अपनी ईमेल से **Subscribe** करना पड़ेगा | आप दोनों माध्यम के लिए एक ही ईमेल से जुड़ सकते हैं |

Join Dhyeya IAS Whatsapp Group by Sending "Hi Dhyeya IAS" Message on 9205336039.

Subscribe Dhyeya IAS Email Newsletter

Step by Step guidance for Subscription:

- **1st Step:** Fill Your Email address in form below. you will get a confirmation email within 2 min.
- **2nd Step:** Verify your email by clicking on the link in the email. (Check Inbox and Spam folders)
- **3rd Step:** Done! you will receive alerts & Daily Free Study Material regularly on your email.

Subscribe



Address: 635, Ground Floor, Main Road, Dr. Mukherjee Nagar, Delhi 110009
Phone No: 011-47354625/ 26 , 9205274741/42, 011-49274400

ध्येय IAS अब व्हाट्सएप पर Dhyeya IAS Now on Whatsapp

ध्येय IAS अब व्हाट्सएप पर
मुफ्त अध्ययन सामग्री उपलब्ध है

ध्येय IAS के व्हाट्सएप ग्रुप से जुड़ने
के लिए 9355174442 पर **"Hi Dhyeya IAS"**
लिख कर मैसेज करें

आप हमारी वेबसाइट के माध्यम से भी जुड़ सकते हैं
www.dhyeyaias.com
www.dhyeyaias.in



ध्येय IAS के व्हाट्सएप ग्रुप से जुड़ने के लिए **9355174442** पर **"Hi Dhyeya IAS"** लिख कर मैसेज करें

नोट: अगर आपने हमारा Whatsapp नंबर अपने Contact List में Save नहीं किया तो आपको प्रीतिदिन के मैटेरियल की लिंक प्राप्त नहीं होंगी इसलिए नंबर को Save जरूर करें।

आप हमारी वेबसाइट के माध्यम से भी जुड़ सकते हैं

www.dhyeyaias.com
www.dhyeyaias.in



Address: 635, Ground Floor, Main Road, Dr. Mukherjee Nagar, Delhi 110009
Phone No: 011-47354625/ 26 , 9205274741/42, 011-49274400